उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—४ जून-जुलाई—१९८५ अंक—६-७

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल, 'विवेक शिखा'॥

संपादक
डॉ० केदारनाथ लाभ

सह संपादक
शिशिर कुमार मल्लिक

संपादकीय कार्यालय :
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर,
छपरा—८४१३०१
(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	२५० रु०
षड् वार्षिक	१०० रु०
द्वैवार्षिक	५५ रु०
वार्षिक	२० रु०
एक प्रति	२ रु० ५० पैसे

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

जो गुरु के बारे में मनुष्य-बुद्धि रखता है उसके साधन-भजन का क्या फल होगा? गुरु के बारे में मनुष्य-बोध नहीं रखना चाहिए। इष्ट-दर्शन होने के पहले शिष्य को प्रथम गुरु के दर्शन होते हैं। फिर ये गुरु ही शिष्य को इष्टदेव के दर्शन करा देते हैं तथा स्वयं धीरे-धीरे उस इष्टरूप में विलीन हो जाते हैं। तब शिष्य गुरु तथा इष्टदेव को अभिन्न, एकरूप देखता है। इस अवस्था में शिष्य जो वर माँगता है, गुरु उसे वही देते हैं। यहाँ तक कि गुरुदेव उसे सर्वोच्च निर्वाण की अवस्था तक दे सकते हैं। या अगर शिष्य चाहे तो वह उपास्य-उपासकरूपी भाव-सम्बन्ध को बनाए रखकर द्वैत अवस्था में भी रह सकता है। वह जैसा चाहे गुरु उसके लिए वैसा ही कर देते हैं।

(२)

गुरु मानो मध्यस्थ हैं। जैसे मध्यस्थ प्रेमिक को प्रेमिका के साथ मिला देता है वैसे ही गुरु भी साधक को इष्ट के साथ मिला देते हैं।

(३)

धर्म जीवन-यापन करना हो तो जो साधु-महात्मा ईश्वर का ध्यान-चिन्तन करते हैं; जिन्होंने उन्हें प्राप्त कर लिया है, उन्हीं की बातों पर विश्वास रखकर चलना चाहिए। यदि तुम्हें मामले-मुकदमें की सलाह चाहिए तो तुम वकील की ही सलाह लोगे न कि किसी ऐरे-गैरे की!

(४)

यदि तुम्हारे भीतर ईश्वर के प्रति ठीक-ठीक अनुराग हो, उन्हें जानने की स्पृहा उत्पन्न हो तो अवश्य ही वे तुम्हें सद्गुरु से मिला देंगे। साधक को गुरु के लिए चिन्ता नहीं करनी पड़ती।

गुर्वष्टक स्तोत्रम्

—श्रीमत् शङ्कराचार्य

शरीरं सुरूपं सदा रोगमुक्तं, यशश्चारु चित्रं धनं मेरुतुल्यम् ।
गुरोरङ्घ्रि-पद्मे मनश्चेन्न लग्नं, ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥१
कलत्रं धनं पुत्र-पौत्रादि सर्वं, गृहं बान्धवाः सर्वमेतद्धि जातम् ।
गुरोरङ्घ्रि-पद्मे मनश्चेन्न लग्नं, ततः किं ततः किं·········॥२
षडङ्गादिवेदो मुखे शास्त्रविद्या, कवित्वञ्च गद्यं सुपद्यं करोति ।
गुरोरङ्घ्रि-पद्मे मनश्चेन्न लग्नं, ततः किं ततः किं······॥३
विदेशेषु मान्यः स्वदेशेषु धन्यः, सदाचारवृत्तेषु सक्तस्तथापि ।
गुरोरङ्घ्रि-पद्मे मनश्चेन्न लग्नं, ततः किं ततः किं ·······॥४
क्षमामण्डलेऽशेषभूपालवृन्दैः, सदा सेवितं यस्य पादारविन्दम् ।
गुरोरङ्घ्रि-पद्मे मनश्चेन्न लग्नं, ततः किं ततः किं········॥५
यशश्चेद्गतं दिक्षु दान प्रतापाज्जगद्वस्तु सर्वं करे यत्प्रसाद ।
गुरोरङ्घ्रि-पद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥६
न भोगे न योगे न वा वाजिमेधे, न कान्तासुखे नैव वित्तेषु चित्तम् ।
गुरोरङ्घ्रि-पद्मे मनश्चेन्न लग्नं, ततः किं ततः किं·········॥७
अरण्ये न वा स्वस्य गेहे न कार्ये, न देहे मनो मे वर्तते त्वनर्घ्ये ।
गुरोरङ्घ्रि-पद्मे मनश्चेन्न लग्नं, ततः किं ततः किं··········॥८
गुरोरष्टकं यः पठेत् पुण्यदेही, यतिर्भूपतिर्ब्रह्मचारी च गेही ।
लभेद्वाञ्छितार्थं पदं ब्रह्मसंज्ञं, गुरोरुक्तवाक्ये मनो यस्य लग्नम् ॥९

भावार्थ—शरीर सुन्दर और सर्वथा रोगमुक्त ही क्यों न हो, एवं सुयश और मेरुपर्वत तुल्य विचित्र धन ही क्यों न हो, किन्तु गुरु के पाद-पद्मों में यदि चित्त नहीं लगा तो क्या हुआ ? १

स्त्री, धन, पुत्र-पौत्रादि एवं गृह तथा बान्धव समूह—इन सबकी प्राप्ति होने पर भी यदि गुरु के पाद-पद्मों में आदि ।२

मुँह में छओ वेद, शास्त्र-विद्या और कवित्व आदि वर्त्तमान हैं, गद्य एवं सुपद्य रचना की शक्ति है, किन्तु गुरु के पाद-पद्मों में आदि ।३

विदेश में सम्मानित, स्वदेश में यशस्वी, सदाचार और सत्कार्य में निरत रहने पर भी यदि गुरु के पाद-पद्मों में आदि ।४

समस्त पृथ्वी-मंडल में जिनके पाद-पद्म अशेष भूपालों द्वारा सेवित हैं उनका चित्त भी यदि गुरु के पाद-पद्मों में आदि ।५

दान के प्रभाव से दिशा-दिशा में यश-विस्तार होने पर भी, जिनके अनुग्रह से संसार की सभी वस्तुएँ हस्तगत होती हैं उन गुरु के आदि ।६

चित्त भोग में लिप्त न हो, योग में युक्त न हो, अश्वमेध में रत न हो, कान्ता के सुख में आसक्त न हो, धन से भी मुग्ध न हो तथापि गुरु आदि ।७

मेरा मन वन में या अपने घर में बद्ध न हो, कामों में आसक्त न हो, निंन्दित देह में भी वर्त्तमान न रहे, तथापि गुरु आदि ।८

जो पुण्यात्मा संन्यासी, राजा, ब्रह्मचारी या गृहस्थ गुर्वष्टक का पाठ करते हैं तथा गुरु के उपदेश में जिनका मन सर्वदा लग्न रहता है, वे सबकी वांछित वस्तु ब्रह्मधाम को प्राप्त करते हैं ।९

सम्पादकीय सम्बोधन

चंदन तरु हरि संत समीरा

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

'विवेक शिखा' का यह अंक—'स्वामी वीरेश्वरानन्द स्मृति अंक'—आपके हाथों में है। रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के चिरस्मरणीय दसवें महाध्यक्ष, पुण्यश्लोक श्रीमत् स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज की पावन स्मृति में उनके अविनाशी विमल व्यक्तित्व को श्रद्धा के कुछ शब्द-सुमन, कुछ अक्षर-अर्घ्य अर्पित करने का हमारा यह एक विनम्र प्रयास मात्र है।

आप सब जानते हैं, स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज ने लगभग ७० वर्षों तक रामकृष्ण संघ में, एक ब्रह्मचारी से लेकर महाध्यक्ष तक के कई पदों पर रहकर, विभिन्न रूपों में विश्व-मानवता की अविस्मरणीय महत् सेवाएँ कीं।

पूज्य स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज रामकृष्ण मठ एवं मिशन जैसे विश्व-व्यापी संघ के मात्र एक महाध्यक्ष नहीं थे। वे स्वयं में एक महासंघ थे, एक महासंस्थान थे—उच्चतम जीवनादर्शों के, त्याग, तप, सेवा, करुणा और विश्व-मानवता के प्रति अक्षय प्रेमानुराग के।

धर्म भारत का मूलाधार चक्र है, मेरुदण्ड है, कुण्डलिनी शक्ति है। और विगत ७० वर्षों से पूज्य स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज भारत की इस कुण्डलिनी शक्ति के जागरण के लिए सतत् सचेष्ट रहे। वे जानते थे, धर्म के धरातल पर ही भारत विशाल वटवृक्ष की भाँति खड़ा होकर अपना सर्वाङ्गीण विकास कर सकता है और विश्व की तापित-शापित मानवता को अक्षय शान्ति और सुख की शीतल छाया प्रदान कर सकता है।

ज्ञान, भक्ति और कर्म—तीनों ने महानदियों की भाँति उनकी चेतना में स्वयं को समाहित कर उनके व्यक्तित्व को महासागर की गरिमा प्रदान की थी। भारत महामानवों का सागर रहा है। स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज उस सागर की, किसी शरद पूनो की रात में उठनेवाली एक उच्छल, अकलुष महातरंग थे। आप स्वयं कल्पना कीजिए, जिस व्यक्ति को उसकी पाँच वर्ष की अवस्था में स्वामी विवेकानन्द की दिव्य दृष्टि की अमृतधारा में अभिषिक्त होने का सुअवसर मिला हो, चौबीस वर्ष की आयु में साक्षात् श्री श्रीमाँ सारदा से मंत्र-दीक्षा लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो तथा पच्चीस वर्ष के वय में श्रीरामकृष्ण के मानसपुत्र स्वामी ब्रह्मानन्दजी महाराज से ब्रह्मचर्य-दीक्षा एवं पुनः उन्हीं से अट्ठाइसवें वर्ष की आयु में संन्यास की दीक्षा प्राप्त करने का मणि-कांचन योग मिला हो उस व्यक्ति का जीवन कैसा होगा! प्रभु ईसा मसीह ने कहा था—'जिसने पुत्र को देखा है, उसने पिता को भी देख लिया।' अतः स्वामी ब्रह्मानन्द मानो श्री श्रीठाकुर के ही प्रतिरूप थे। और इस प्रकार स्वामी विवेकानन्दजी की दृष्टि-दीक्षा, श्रीमाँ सारदा की मंत्र-दीक्षा तथा श्रीरामकृष्ण के रूप में स्वामी ब्रह्मानन्दजी की ब्रह्मचर्य और संन्यास दीक्षा से प्रदीप्त स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज एक सचल तीर्थराज हो गये थे। इन एक में मानों तीनों महाशक्तियाँ समाविष्ट हो गयी थीं।

अद्भुत था उनका जीवन। विलक्षण थी उनकी प्रेरक वाणी। शरत्कालीन ओस बिन्दुओं की भाँति नीरव-निःस्पन्द थी उनकी लोक-हितैषिणी अविरल-अखंड

कर्मधारा। अन्तर्जीवन को अचिर आलोकित कर देनेवाली थी उनकी अनाविल दृष्टि। शीतलता की वृष्टि करनेवाला होता था उनका अनुपम हास्य-विनोद और एक अनिर्वचनीय आनन्द के लोक में प्रतिष्ठित कर देनेवाला था उनका मधु-स्पर्श। अखिल विश्व में फैले पचहत्तर हजार से अधिक उनके गृही एवं संन्यासी शिष्य तथा उनकी कृपा और करुणा के सम्पर्क में आनेवाले असंख्य सौभाग्यशील नर-नारी उनके इन अद्भुत् गुणों के साक्षी हैं।

लाटू महाराज (स्वामी अद्भुतानन्द) श्रीरामकृष्ण के अद्भुत् चमत्कार थे। अपढ़ लाटू महाराज ने, श्रीरामकृष्ण का सान्निध्य प्राप्तकर, उनकी एक लघु कृपा-दृष्टि से ही आध्यात्मिक अनुभूतियों के चूड़ान्त शिखर का आरोहण कर लिया था, धर्म-जीवन की उच्चतम अवस्था प्राप्त कर ली थी। प्रभु महाराज (स्वामी वीरेश्वरानन्द) स्वामी विवेकानन्द की दैवी दृष्टि के विलक्षण चमत्कार थे। स्वामीजी ने प्रभु महाराज को उनके पाँचवे वर्ष के वय में देखा था— अपनी गहन दृष्टि से देखा था। उस देखने का, उस दृष्टि का सुपरिणाम होना था। हुआ। प्रभु पांडुरंग कालान्तर में स्वामी वीरेश्वरानन्द (स्वामी विवेकानन्द के बचपन का एक नाम वीरेश्वर था) हो गये— स्वामी विवेकानन्द के भावादर्शों को एक रचनात्मक रूप देनेवाले प्रतिनिधि हो गये, पुरोधा हो गये। आप उस ऐतिहासिक घटना को जान लें।

फरवरी १८९७ का वह एक गौरवोज्वल दिन था-- संभवतः ६ से ९ फरवरी के बीच का कोई दिन। स्वामी विवेकानन्द पश्चिमी देशों में हिन्दू धर्म की विजय-वैजयन्ती फहराकर भारत लौटे हैं। वे मद्रास के 'कैसूल कर्नाल' भवन में ठहरे हैं। असंख्य नर-नारी उनके दर्शनों के लिए उमड़ पड़े हैं। उन्हीं के बीच हैं—एक सज्जन। उनकी गोद में पाँच वर्ष का एक शिशु है। शिशु नहीं जानता था कि वह किसे देखने आया है। बाद में उसने जाना कि वे ही थे स्वामी विवेकानन्द। शिशु का नाम था—पांडुरंग प्रभु—बाद में प्रभु महाराज या स्वामी वीरेश्वरानन्द के नाम से विख्यात— रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के दशम अध्यक्ष। स्वामी वीरेश्वरानन्दजी से पूछने पर कि "क्या आपने स्वामी विवेकानन्द को देखा है?" उपर्युक्त घटना के आधार पर वे अपनी स्वाभाविक कौतुकप्रियता से उत्तर देते,— "मैंने स्वामी विवेकानन्द को देखा था या नहीं इसके विषय में कुछ नहीं कह सकता, किन्तु स्वामीजी ने मुझे अवश्य देखा होगा।"

स्वामी विवेकानन्द की दिव्य दृष्टि ने बालक प्रभु पांडुरंग के जीवन को कितना और कैसा रूपान्तरित कर दिया था यह आप इस अंक के पृष्ठों में पढ़कर समझ सकेंगे।

स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज के शरीर का वजन था मात्र २६ किलोग्राम। छोटा कद। दुबला-पतला शरीर। अस्थियों का एक ढाँचा मात्र। भोजन इतना कम कि एक डॉक्टर ने उनसे कभी कहा था— 'महाराज इतना कम भोजन नहीं करें। शरीर-पोषण के लिए आवश्यक कैलोरीज से बहुत कम आप लेते हैं। कैसे शरीर ठहरेगा?" प्रभु महाराज ने सहास कहा— 'देखो, तुम्हारा मेडिकल साइंस फेल कर गया न! मैं तो इसी भोजन पर इतने वर्षों से जीवित हूँ।' और पूज्य प्रभु महाराज उसी दो-चार चम्मच भोजन पर ९२ वर्षों तक अद्भुत रूप से अत्यंत सक्रिय और कर्मठ जीवन जीते रहे।

लेकिन यह तो स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज की बाह्य शरीर-यष्टि थी। उस शरीर के भीतर एक और शरीर था—बड़ा सबल—सशक्त, और विस्मयकारी। उस आंतरिक शरीर में एक अद्भुत चेतना-तरंग, एक विद्युत-शक्ति, एक अपूर्व ऊर्जा-धारा सदैव लहराती रहती थी। वह चेतना-तरंग, वह विद्युत-शक्ति, वह ऊर्जा थी उनमें पूर्णतः विकसित और निहित गुरु-शक्ति की।

गुरु-शक्ति। अर्थात् सच्चिदानन्द परमात्मा की व्यक्त प्रकट शक्ति। यह वही शक्ति थी जो उनके मुख-मंडल पर एक बालक की भाँति निष्कलुष, किन्तु चुम्ब-कीय हास बनकर तैरतीरहती थी। यह वही शक्ति थी जो उनमें प्रतिपल आनन्द का ज्वार उठाये रहती थी। यह वही शक्ति थी जो उनमें अनन्त दग्ध-दुःखी, शोषित-पीड़ित, लांछित उपेक्षित निःस्व-निर्धन प्राणियों के लिए अशेष करुणा का संचार कर उनके सुख, सम्वर्धन, प्रगति और विकास के लिए, कल्याण और मंगल के लिए अपरिमित आशीष की सार्थक वर्षा करवाती रहती थी। और यह वही शक्ति थी जो नारियों के अभ्युत्थान के लिए, युवकों के कल्याण के लिए, दीनों-दरिद्रों के जीवन में नये विहान के लिए तथा भारत के सर्वाङ्गीण विकास के अभियान के लिए उनसे नयी-नयी योजनाओं की परिकल्पना करवाकर उन्हें साकार रूप देने का मंत्रोच्चार कराती रहती थी।

१९६६ ई० में वे रामकृष्ण मठ एवं मिशन के महाध्यक्ष बने। और तब से महासमाधि लेने तक, १९ वर्षों के दीर्घकाल तक—संघगुरु के रूप में जो कार्य उन्होंने किये वे चकित-चमत्कृत कर देनेवाले हैं। न केवल देश-विदेश के ७५ हजार से अधिक लोगों को उन्होंने मन्त्र दीक्षा दी थी, बल्कि असंख्य लोगों का उन्होंने आध्यात्मिक मार्ग-दर्शन भी किया था। अनगिनत लोग अपने निजी जीवन की भौतिक, पारिवारिक और सामाजिक समस्याएँ लेकर भी उनके समक्ष उपस्थित होते थे। और वे सबकी सहायता के लिए, सबकी समस्याओं को धीरतापूर्वक सुनने और उनके उपयुक्त समाधान प्रस्तुत करने के लिए सदैव उपलब्ध रहते थे।

रामकृष्ण संघ के सभी केन्द्रों (मनसाद्वीप को छोड़कर) पर उन्होंने पदार्पण किया था। देश-विदेश में कई स्थानों पर जाकर उन्होंने भक्तों पर कृपा की थी। कई मंदिरों, प्रतिष्ठानों, स्वर्ण जयन्ती एवं रजत जयन्ती उत्सवों आदि का उद्घाटन उन्होंने किया था। १९८० ई० में रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के द्वितीय महाधिवेशन के ऐतिहासिक आयोजन के मूल में उनकी प्रेरक शक्ति ही कार्य कर रही थी। इसी भाँति सारे भारत में मनाये जाने वाले युवा सम्मेलनों के पीछे भी वे ही चेतना-धारा का कार्य कर रहे थे। उन्हीं की प्रेरणा से रामकृष्ण-मिशन के द्वारा गाँवों के विकास की कई योजनाओं का सूत्रपात किया गया। दिव्यायन, पल्ली मंगल आदि ऐसी ही योजनाएँ हैं। शिक्षा के क्षेत्र में भी उनकी प्रेरणा से रामकृष्ण-मिशन ने अनेक महत्व-पूर्ण भूमिकाएँ अदा की हैं।

नारियों की अवस्था के सुधार में उनका विशेष ध्यान रहता था। 'सारदा पीठ' की स्थापना उसी दिशा में किया गया उनका एक महत् प्रयास है।

गरीबों, पिछड़ा वर्ग के लोगों, हरिजनों और आदिवासियों के सर्वाङ्गीण विकास के लिए उनके हृदय में जैसे एक आग दहकती रहती थी। और इस दिशा में उनके द्वारा किये गये कार्य चिरस्मरणीय रहेंगे।

बाढ़, महामारी, दुर्भिक्ष, आँधी-तूफान, अग्नि-कांड आदि से प्रभावित लोगों के दुःख से द्रवीभूत हो वे उनकी अधिकतम सेवा के लिए मठ के साधुओं को अविलम्ब नियोजित कर देते थे। और यह कार्य राष्ट्रीय स्तर पर होता था—बंगाल, बिहार, यू. पी. हो या गुजरात, राजस्थान और आँध्र प्रदेश—सर्वत्र रामकृष्ण-मिशन आपदा की घड़ियों में सेवा के लिए प्रस्तुत है।

श्रीरामकृष्ण ने प्रार्थना की थी—"माँ, मुझे शुष्क संन्यासी मत बनाओ। मुझे रस में—आनन्द में डुबाए रखो।" और माँ ने उनकी प्रार्थना सुनी थी। वे आनंद की हाट हो गये थे। स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज भी आनन्द की प्रतिमूर्ति थे। सहज हास और विनोदप्रियता उनका स्वाभाविक धर्म हो गयी थी

हृदय में माँ की ममता, मस्तिष्क में स्वामी विवेकानन्द के आदर्शों को चरितार्थ करने का अकुंठ आवेग और आत्मा में ब्रह्मानन्द का भाव। इन्हीं त्रिगुणा-त्मिका शक्तियों ने उनके जीवन को अलौकिकता प्रदान

कर दी थी। गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है—"चन्दन तरु हरि संत समीरा'। ईश्वर चन्दन के वृक्ष हैं, सुगंध की खान हैं और संत-सद्गुरु ईश्वर के गुणों की सुगंध को वायु की भाँति दूर-दूर तक फैला देते हैं। स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा और स्वामी विवेकानन्दजी के भावादर्शों को आजीवन अथक भाव से प्रचारित-प्रसारित करते रहे।

ब्रह्मलीन होने के बहुत पूर्व स्वामी विवेकानन्द ने एकदिन भगिनी निवेदिता से कहा था—"That will be a great death I shall die, saying 'Hara! Hara! Hara!"—यदि मैं 'हर! हर! हर!' उच्चारण करते हुए अपना शरीर-त्याग करूँ तो वह मेरी महामृत्यु होगी।' और ऐसा ही हुआ था। स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज ने भी कुछ इसी प्रकार अपना महाप्रयाण किया। इस वर्ष की फरवरी से ही उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा था। १२ मार्च की रात में उनकी अवस्था गंभीर हो गयी। १३ मार्च की सुबह स्वास्थ्य में कुछ सुधार हुआ। दिन के २-३० बजे सेवक से गंगाजल माँगकर ग्रहण किया। फिर श्रीरामकृष्ण का चरणामृत भी पान किया। प्रसन्नतापूर्वक श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा देवी, स्वामी विवेकानन्द तथा स्वामी ब्रह्मानन्दजी के नाम लेकर उनके प्रति प्रणाम अर्पित किये। सभी भक्तों तथा साधु-ब्रह्मचारियों के प्रति आशीर्वाद ज्ञापन किया और ३ बजकर १० मिनट पर, ब्रह्म वेला में, तीन दीर्घनिःश्वास लेकर आनन्दपूर्वक महाप्रयाण किया। जैसे उन्होंने अपने शरीर के जीर्ण वस्त्र को स्वेच्छा से उतार दिया। ज्योति का एक महाज्वार ज्योति के महासागर से मिलकर एकाकार हो गया। ब्रह्मज्ञ ब्रह्म से तदाकार हो गया।

लक्ष-लक्ष आकुल नर-नारी उनके अंतिम दर्शनों को उमड़ पड़े। सारदा पीठ की संन्यासिनियाँ रो पड़ीं। किसी स्वामीजी ने कहा—अब हमलोग अनाथ हो गये। अनेक गृही भक्त, विशेषकर गरीब जन आकुल हो विलख पड़े।

रामचरितमानस में मानस-रोगों की विशद चर्चा करते हुए उनके उपचार के क्रम में कहा गया है—

'सद्गुरु बैद बचन बिस्वासा।
संजम यह न बिषय कै आसा।"

यानी सद्गुरुरूपी वैद्य के वचन में विश्वास हो तथा विषय-वासनाओं की आशा के परित्याग का संयम हो, परहेज हो।

आज हमारा राष्ट्रपुरुष भी विभिन्न मानस-रोगों से ग्रस्त है। इनसे छूटने का एक ही उपाय है। हमें सद्गुरु रूपी वैद्य के वचन में दृढ़ विश्वास रखना होगा। विषयों की मृगतृष्णा से मुक्त होना होगा। हमारा कर्त्तव्य है कि हम आज स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज के सदुपदेशों को अपने जीवन में उतारें। तभी हमारा कल्याण है।

देश राजनायकों से नहीं, जो सत्ता की बागडोर हाथ में लेकर लोगों को कठपुतली की तरह नचाते हैं, उनसे नहीं, बल्कि उन महापुरुषों से बनता है जो अपने त्याग, तप, तितिक्षा, निःस्वार्थ-सेवा और करुणा तथा प्रेम से अपना जीवन लोक-मंगल के लिए होम कर देते हैं। स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज ऐसे ही महापुरुष थे। ऐसे ही महापुरुषों का सम्बल लेकर धरती टिकी रहती है। नहीं तो कब के वह उलट जाती। एक कवि की पंक्तियाँ दुहराने का मन करता है—

'वीर तुम्हारा लिये सहारा
टिका हुआ है भूतल सारा,
तुम न हुए होते तो कब का
उलट गया होता संसार
नमन् तुम्हें मेरा शतवार।

आइए, ऐसे महापुरुष पूज्य स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज के पावन पाद-पद्मों पर अपनी मौन श्रद्धा, अपना मौन नमन् अर्पित कर हम सब धन्य हो जायँ। जय श्रीरामकृष्ण! जय श्रीमाँ सारदा देवी! जय स्वामी विवेकानन्द! जय स्वामी वीरेश्वरानन्द!

श्रद्धाञ्जलि

—श्रीमत् स्वामी गम्भीरानन्दजी महाराज

महाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ एवं मिशन

[विगत २५ मार्च, १९८५ को बेलुड़ मठ में अनुष्ठित श्रीमत् स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज की स्मृति-सभा में पठित रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के तत्कालीन सहाध्यक्ष एवं वर्तमान महाध्यक्ष पूज्यपाद श्रीमत् स्वामी गंभीरानन्दजी महाराज की वाणी का 'उद्बोधन' से किया गया हिन्दी रूपान्तर। रूपान्तरकार हैं—डॉ० केदारनाथ लाभ।]

एक आधुनिक गीत के आरंभ में है—"तोमार समाधि फूले-फूले ढाका, के बले तुमि नाइ, तुमि आछो—मन बले ताइ।"

अर्थात्—"तव समाधि है पुष्पाच्छादित
तुम हो नहीं—कौन कहता है?
तुम हो—ऐसा मन कहता है।"

पूज्यपाद वीरेश्वरानन्दजी महाराज का मृत-शरीर पावन चिताग्नि में भस्मीभूत हो गया है तथा वह स्थान अभी पुष्पराशि से सुसज्जित हो गया है एवं साक्ष्य दे रहा है कि उनका शरीर अब शेष नहीं है। किन्तु, ऐसा होने पर भी उनकी देहाकृति अभी भी हमलोगों की स्मृति में सजीव है। अब वे भक्तगणों के ध्यान की वस्तु हो गये हैं। उनकी देह, उनका जीवन, उनका चरित्र, उनकी भावराशि—ये सब हमलोगों के लिए पूत, पवित्र एवं प्रेरणादायक हैं। और ऐसा होना ही स्वाभाविक है। देवता को अपने सम्मुख नहीं पाने पर भी हमलोग उनकी प्रतिमा की पूजा करते हैं। और मन में सोचते हैं, प्रतिमा सचमुच ही देवता है। उस प्रतिमा की आकृति, अङ्गभूषण, निर्माल्य, चरणोदक सबकुछ हमलोगों के लिए पवित्र हैं, सब कुछ ध्यान की वस्तु हैं।

किन्तु, इतना ही सब कुछ नहीं है। पूज्यपाद स्वामी वीरेश्वरानन्दजी के भीतर से एक गुरु-शक्ति प्रकाशित हुई थी एवं उसी शक्ति के बल से उन्होंने अविराम भाव से भारतवर्ष के विभिन्न स्थानों का भ्रमणकर हजारों-हजार नर-नारियों को धर्म-पथ पर परिचालित किया था। यही गुरु-शक्ति हमलोगों के लिए विशेष आदरणीय है। श्रीठाकुर ने कहा था—गुरु के प्रति मनुष्य-बुद्धि नहीं रखनी चाहिए। सुतरां प्रभु महाराज की देह ही सब कुछ नहीं है। उनके भीतर से जो गुरु-शक्ति प्रकाशित हुई थी उसके प्रति हमलोगों को ध्यान रखना आवश्यक है,—केवल मनुष्य के हिसाब से नहीं। इस गुरु-शक्ति की दृष्टि से ही शक्ति एवं शक्तिमान भगवान् अभिन्न हैं। इसी कारण से शास्त्र में कहा गया है—"गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥" इसी दृष्टि के अवलम्बन के कारण ही वे किसी को भी अपनी जन्मतिथि नहीं बताते थे। और ठाकुर, माँ एवं स्वामीजी की आविर्भाव-तिथि का पालन करने तथा उनके ही ऊपर दृष्टि निबद्ध रखने को कहा करते थे। गुरुपूर्णिमा भी वे मानते थे, किन्तु उन्हें भय था कि आगे चलकर भक्तगण विभिन्न गुरुओं का अवलम्बन कर विभिन्न पंथों में कहीं परिणत न हो जायँ।

वे जैसे गुरु थे, वैसे ही संघाध्यक्ष भी थे। यह कार्य कितना दायित्वपूर्ण है, उसे यह भार जिन्होंने वहन किया है वे ही जानते हैं। संघ को—भक्त, संन्यासी सबको एक सूत्र में गूँथकर समानभाव से परिचालित करना कोई बहुत सहज बात नहीं है। इधर उन्होंने भक्तों के बीच भाव-प्रचार के प्रति विशेष ध्यान दिया था। रामकृष्ण मठ और मिशन के बाहर श्री श्रीराम-कृष्ण के नाम से अनेक आश्रम बन गये हैं, उनके बीच जिससे भावधारा का विनिमय हो सके—एक बन्धुत्व का भाव उत्पन्न हो सके, इसके लिए वे सचेष्ट थे। मठ के नवागत ब्रह्मचारीगण जिससे सुशिक्षित हो सकें, इसके लिए भी वे अर्थ आदि की व्यवस्था कर गये हैं। और उन सबसे वे नित्य प्रति मिलते। उनकी एक और इच्छा थी कि रामकृष्ण-विवेकानन्द-साहित्य सस्ते दाम पर या बिना मूल्य के जनसाधारण तक पहुँचाया जा सके। निम्न जाति की उन्नति के प्रति भी उनका ध्यान था। अरुणाचल के प्रथम केन्द्र अलौंग नगर का आवासीय विद्यालय मुख्यरूप से उनके उत्साह से ही आरम्भ हुआ। इधर 'पल्ली मंगल' के कार्यों की ओर उनका ध्यान आकृष्ट हुआ था एवं इस दिशा में कई कार्य भी शुरू हुए हैं। स्वामी विवेकानन्दजी के आदर्श के अनुसार गंगा के उस पार के तट पर नारी-मठ की स्थापना में वे अन्यतम उद्यमी थे।

उन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की थी। पहले वे वक्ता नहीं थे। किन्तु संघाध्यक्ष होने के बाद अनेक स्थानों पर कई व्याख्यान उन्हें देने पड़े थे। और सभी व्याख्यान हुए थे खूब सुन्दर और सुचिन्तित। इन सभी गुणों से बढ़कर उनका सर्वाधिक आकर्षक गुण था श्री श्रीठाकुर, श्री माँ, स्वामीजी और महाराज के प्रति उनकी अगाध भक्ति और श्रद्धा। अपनी वृद्धावस्था में भी जराजीर्ण, क्षीण और रोगग्रस्त शरीर लेकर प्रतिदिन वे बेलुड़ मठ के प्रत्येक मन्दिर में प्रणाम करने जाते तथा अंतिम विदा उन्होंने ली है उन चारों जनों को अपना प्रणाम निवेदित कर। श्री श्रीठाकुर की सेवा में किसी प्रकार की त्रुटि वे सह नहीं पाते थे। एकबार किसी एक शाखा केन्द्र के अध्यक्ष के सम्बन्ध में जब उनसे कहा गया—ये सुदक्ष कार्य-संचालक हैं, तब उन्होंने अपना मंतव्य व्यक्त किया—ये संचालक हो सकते हैं, किन्तु सेवायत नहीं हैं।

आरब्ध, अर्धपूर्ण और अनारब्ध अनेक प्रकार के कार्यों का दायित्व वे हमलोगों के ऊपर सौंप गये हैं। उनके द्वारा प्रदर्शित प्रणाली के द्वारा हम सबको—संघ के प्रत्येक अंग को—भक्त, साधु, ब्रह्मचारी सबको समवेत भाव से उपासना करनी होगी। हरि ॐ तत् सत्। ◘

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः।।
यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः।।

— गीता ८/५-६

'जो पुरुष अन्तकाल में मेरा ही स्मरण करता हुआ शरीर का त्याग करता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूप को प्राप्त होता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। हे अर्जुन! यह मनुष्य अन्तकाल में जिस-जिस भाव का स्मरण करता हुआ अपने शरीर का त्याग करता है, वह उस-उस को ही प्राप्त होता है, क्योंकि वह सदा उसी भाव से प्रेरित रहा हुआ है'

वीरेश्वरानन्द महाराज की सेवापरायणता

श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज
(सहाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ एवं मिशन)

[पू० स्वामी वीरेश्वरानन्द महाराज की महासमाधि के बाद उन्हें श्रद्धांजलि समर्पित करने के लिए ता० २५/३/८५ को बेलुड़ मठ में आयोजित सभा में पू० भूतेशानन्दजी महाराज द्वारा प्रदत्त अध्यक्षीय भाषण पर आधारित यह लेख है—सं०]

एकबार पूज्य स्वामी वीरेश्वरानन्द महाराजजी ने कहा था, "अभी तो तुमलोगों ने मुझे संघ का अध्यक्ष बना दिया है। किन्तु, जानते हो, पहले पुस्तकों को ढोते-ढोते कंधों पर छाले पड़ गये थे।" वास्तव में पू० महाराज ने आजीवन कठोर परिश्रम किया था। प्रारम्भ में जब वे अद्वैत आश्रम में थे, तब उन्हें स्वयं पुस्तकों को कंधों पर ढोकर पैदल ही पोस्ट-ऑफिस तक ले जाना पड़ता था। वे जब मद्रास मठ में थे, तब भी विभिन्न प्रकार के कार्य, यहाँ तक कि रसोई आदि बनाने का कार्य भी करते थे। जब वे रामकृष्ण मिशन के सहायक सचिव के रूप में बेलुड़ मठ में रहते थे, तब राहत कार्यों के लिए कठोर परिश्रम उन्हें करना पड़ा था और बहुत दक्षतापूर्वक इन कार्यों का उन्होंने संचालन किया था। एक छोटे-से कमरे में कष्टपूर्वक वे रहते थे। बहुत ही सादगीपूर्ण उनका जीवन था। बाहर से कोई यह नहीं समझ सकता था कि वे रामकृष्ण मिशन के सहायक सचिव हैं।

कार्यदक्षता, निपुणता तथा कुशाग्र बुद्धि के लिए वे प्रसिद्ध थे। यहाँ तक कि पूज्य स्वामी माधवानन्दजी महाराज भी, किसी व्यक्ति के विकट समस्या लाकर उपस्थित होने पर, उसे कहते, "प्रभु (वीरेश्वरानन्द महाराज को प्रभु महाराज के नाम से भी पुकारा जाता था) के पास चले जाओ। प्रभु को बोलो।" कभी ऐसा भी हुआ है कि वह व्यक्ति इसका तात्पर्य न समझने के कारण प्रभु महाराज के पास न जाकर मंदिर में भगवान् के पास चला जाता। बाद में यह जानने पर पू० माधवानन्द महाराज उसे प्रभु महाराज के पास भेज देते।

स्वामी विवेकानन्द की इच्छानुसार संन्यासिनियों के लिए एक अलग से मठ हो, यह उनकी हार्दिक इच्छा थी तथा इसके लिए उन्होंने अथक परिश्रम किया था। उन्हीं के प्रयत्नों के फलस्वरूप सारदा मठ की स्थापना हुई। इसके लिए उन्होंने कई बाधाओं का सामना किया था तथा चंदा इकट्ठा करने का कार्य भी किया था। यहाँ तक कि वे इस कार्य के लिए बम्बई भी गये थे। कुछ महीने वहाँ रहकर कठोर परिश्रम किया था—चंदा इकट्ठा करने के लिए।

रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा के प्रचार-प्रसार के लिए भी उन्होंने बहुत प्रयत्न किया था। उनकी यह हार्दिक इच्छा थी कि रामकृष्ण-विवेकानन्द की पुस्तकें सस्ते मूल्यों पर साधारण जनता को उपलब्ध हों।

श्री रामकृष्णदेव के पार्षदों के जन्म-स्थानों पर रामकृष्णसंघ के केन्द्र बनें, यह उनकी हार्दिक इच्छा थी तथा इसके लिए भी उन्होंने बहुत प्रयत्न किया था। उन्हीं की प्रेरणा तथा चेष्टा के फलस्वरूप स्वामी शिवानन्द महाराज के जन्म-स्थान बारासात में तथा स्वामी ब्रह्मानन्द महाराज के जन्मस्थान सिकराकुलीन ग्राम में अवस्थित अनौपचारिक रूप से चलाये जा रहे आश्रमों का बिधिवत् सम्बन्ध रामकृष्ण संघ से कुछ ही महीने पूर्व हुआ।

इतने सारे कार्यों को करने के बावजूद उनमें 'अहं' का लेश भी नहीं था। वे श्रीरामकृष्ण के यंत्रस्वरूप ही स्वयं को समझते थे। अद्भुत् यंत्र थे वे श्री रामकृष्ण के। सेवा के वे चरम आदर्श थे। अपने जीवन की अन्तिम साँस तक रामकृष्ण संघ की सेवा उन्होंने की। उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करने का श्रेष्ठ तरीका होगा कि हम भी उनके जीवन का अनुकरण कर अपने जीवन को सेवा में अर्पित कर दें तथा श्रीरामकृष्ण के सच्चे यंत्र-स्वरूप बनें। □

श्रीरामकृष्णमय स्वामी वीरेश्वरानन्दजी

श्रीमत् स्वामी आत्मस्थानन्दजी महाराज
सहसचिव
रामकृष्ण मठ एवं मिशन, बेलुड़ मठ।

[परम पूजनीय स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज की महासमाधि के बाद दिनांक २५-३-८५ को बेलुड़ मठ में एक सभा आयोजित कर उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की गयी थी। उस दिन पू० स्वामी आत्मस्थानन्दजी महाराज ने परम पूजनीय वीरेश्वरानन्दजी महाराज की स्मृति में जो बातें कही थीं, उनका सार संक्षेप यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—सं०]

बाईबल में कहा है—"Many are called but a few are chosen" ("बहुतों को बुलाया जाता है किन्तु कुछ ही चुने जाते हैं।") हमलोग इतने सारे—श्रीरामकृष्ण भावानुरागी हैं—और भी कितने लोग आयेंगे, किन्तु श्रीरामकृष्णदेव मानो किसी-किसी को अधिक पसंद करते हैं, उसे चुन लेते हैं, मानो उसके सिर पर सवार होकर अपना कार्य करा लेते हैं। जिस व्यक्ति में श्रीरामकृष्ण का भाव जितनी अधिक मात्रा में प्रकाशित होता है, वह व्यक्ति हमारे लिए उतनी ही अधिक श्रद्धा या भक्ति का पात्र होता है, उसके प्रति हमारा उतना ही अधिक आकर्षण होता है। जो लोग परम पूजनीय वीरेश्वरानन्दजी महाराज से परिचित थे या जो बाद में उनकी जीवनी आदि पढ़कर परिचित होंगे, वे देखेंगे कि श्रीरामकृष्ण का भाव उनमें विशेष रूप से प्रकट हुआ था। इसीलिए उनके प्रति हमारा इतना अधिक आकर्षण है। नहीं तो, क्या इतना अधिक आकर्षण किसी व्यक्ति के प्रति हो सकता है? इसीलिए तो वे हमारे इतने अधिक निकट के हैं—इतने अपने हैं।

श्रीरामकृष्णदेव के भाव की प्रधान बातें क्या हैं? ज्ञान, कर्म, भक्ति और योग—इन चारों का समन्वय व्यक्ति जीवन में समभाव से हो—यही है श्रीरामकृष्ण का विशेष भाव। यदि हम परम पूजनीय वीरेश्वरानन्दजी महाराज के जीवन का विश्लेषण करें तो पायेंगे कि उनके जीवन में इन चारों योगों का अद्भुत् समन्वय हुआ था। पुरानी बातें यदि हम छोड़ भी दें तो भी पिछले कुछ वर्षों से हमने जो कुछ प्रत्यक्ष देखा है, उसी को लें तो क्या देखते हैं? नब्बे वर्ष की आयु, अस्थिचर्म मात्र ही जिनकी देह है, वे व्यक्ति अदभुत् निष्ठा के साथ श्रीरामकृष्ण की सेवा तथा उनका कार्य निरन्तर करते जा रहे हैं। गत २० फरवरी की बात है। मैंने उनके कमरे में जाकर देखा कि वे मंदिर में दर्शन के लिए जाने की हठ पकड़े हुए हैं। स्वास्थ्य अत्यन्त खराब है। दो सेवक मिलकर भी उन्हें संभाल नहीं पा रहे हैं। कभी इस ओर लुढ़कते हैं, तो कभी उस ओर। मैंने अनुनय-विनय के साथ उनसे कहा—"महाराज, कल श्रीरामकृष्णदेव की जन्म-तिथि है, बहुत परिश्रम होगा, आज रहने दीजिए।" किन्तु कौन सुनेगा? आखिर में उन्होंने कहा—"तुम ही मुझे मंदिर में ले चलो।"

उस दिन देखा मानो भीतर से कोई शक्ति उन्हें ठेल रही है। उस दिन पहली बार देखा कि गाड़ी में चढ़ाते समय उनके पाँवों को उठाना पड़ रहा है—ऐसा कभी नहीं करना पड़ता था। फिर भी वे उस भीतरी शक्ति के बल पर मंदिर गये। दूसरे दिन श्रीरामकृष्ण की जन्मतिथि थी। इतना दुर्बल होते हुए भी मानो वे दुर्बलता से युद्ध करते हुए मंदिर में दर्शन करने गये। भक्ति के तो वे घनीभूत स्वरूप ही थे। देश-विदेश से

बहुत अच्छी-अच्छी वस्तुएँ उन्हें भेंट-स्वरूप प्राप्त हुआ करती थीं—उन्हें वे ठाकुर की सेवा में दे दिया करते थे। कहते—"अरे, यह शाल भिजवा दो तो मंदिर में, ठाकुर के लिए। इस वस्तु को भिजवा दो जयरामबाटी, माँ के लिए। उस वस्तु को काशी भिजवा दो—ठाकुर के लिए" इत्यादि।

कुछ दिनों पूर्व की घटना है। उनकी चादर पुरानी हो गयी थी। उसे बदलकर दूसरी चादर उन्हें देने के लिए जब उनकी आलमारी खोली गयी तो उसमें एक भी चादर नहीं मिली। ऐसा था उनका वैराग्य! उनका त्याग! पवित्रता के तो वे मानो मूर्तस्वरूप ही थे।

उनकी तीक्ष्ण बुद्धि की बात तो सर्वविदित ही है। प्रशासनिक कार्यों में जैसी उनकी प्रखर बुद्धि सक्रिय थी, वैसी ही शास्त्रों में भी उनकी गहरी पैठ थी। गीता की श्रीधरी टीका का अंग्रेजी अनुवाद तथा ब्रह्मसूत्र के शंकर भाष्य के आधार पर टिप्पणी सहित उनका अंग्रेजी अनुवाद पढ़कर ही उनकी विचक्षण प्रतिभा का अंदाज हम लगा सकते हैं।

ये तो हुईं ज्ञान तथा भक्ति की बातें। अब कर्मयोग की बात को लें। किस निष्ठा तथा भाव से वे भगवान् के कार्य में रत रहते थे, यह तो जिन्होंने देखा है, वे ही समझ सकते हैं। भगवान् की कृपा से मैंने स्वयं देखा है—सेवा में उनके मन-प्राण कितने निमग्न थे। उदाहरणार्थ कुछ घटनाएँ यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ।

जब बाली दीवानगंज में राहत कार्य समाप्त हुआ तब पूज्य महाराज ने हमलोगों से कहा—"स्वामी विवेकानन्दजी की इच्छा थी कि ग्राम विकास का कार्य किया जाय। तुमलोग राहत कार्य को यहीं समाप्त न कर 'पल्ली- मंगल' का कार्य प्रारम्भ करो।" उन्हीं की प्रेरणा से 'पल्लीमंगल' का कार्य प्रारम्भ हुआ है। वहाँ के कुछ गाँवों में सर्वेक्षण कार्य हुआ। योजना बनी। फिर हमलोगों ने उनसे 'दुले बागदी' की बात कही और बताया कि उनलोगों के बीच विकास का कार्य करना कितना कठिन है। किन्तु वे हतोत्साह नहीं हुए। हम उन्हें उस गाँव में ले गये। वहाँ वे मैदान के बीच एक झोंपड़ी में एक साधारण कुर्सी पर बैठकर घंटों उन ग्रामवासियों की समस्याएँ सुनते रहे। उनकी बातों का उत्तर दिया। कितनी चिन्ता थी उनको ग्रामवासियों के लिए! कल्पना भी नहीं की जा सकती कि समस्त रामकृष्ण संघ के महाध्यक्ष, जिनकी आयु नव्वे वर्ष हो चुकी हो, वे घन्टों इस प्रकार उन लोगों के बीच बैठे हैं, जिनकी दुर्गन्ध से भी हम दूर भाग जायेंगे। वे बार-बार कहते थे—"हाँ, इन्हीं लोगों के लिए अधिक से अधिक करना होगा। इन लोगों के लिए कार्य करो, जितना अधिक हो सके, करो।"

उनलोगों का एक 'शीतला' मंदिर था। वह बाढ़ में बह गया। उन लोगों ने इस मंदिर को बनवा देने का अनुरोध किया। पू० महाराज की अनुमति से हमलोगों ने उसे बनवा दिया। ग्रामवासियों ने जिद ठानी और कहा—"तुम लोगों का वह जो छोटा-सा महाराज है—'बूढ़ा महाराज' उसी से इस मंदिर का उद्घाटन करवायेंगे।" मैंने पूजनीय महाराज से जाकर यह बात कही। तत्काल उन्होंने कहा—"मैं अवश्य जाऊँगा।" उस समय रास्ता बहुत खराब था, फिर भी उन्होंने जाकर दुले बागदी लोगो के मंदिर का उद्घाटन किया। ऐसी कितनी ही घटनाएँ हैं। गुजरात के भुज तथा सूरत में वे राहतकार्य देखने गये। आन्ध्रप्रदेश के राहत कार्य को देखा। उनके सेवा-कार्यों को लिखें तो एक बड़ा इतिहास बन जायगा।

लोगों के लिए, देश के लिए, उनके दिल में कितना दर्द था, यह आप समझ सकेंगे—उनकी पुस्तक 'मातृभूमि के प्रति कर्त्तव्य' (Our duties towards the Mother land) को पढ़कर। देश की समस्याओं के बारे में तथा शिक्षा के बारे में अपने मूल्यवान विचार उस छोटी-सी पुस्तक में उन्होंने व्यक्त किये हैं।

उनका स्नेह केवल दुले बागदियों पर ही सीमित नहीं था—धनियों तथा संसारी लोगों पर भी उनकी कृपा थी। और मुझे लगता है कि सबसे अधिक उनकी कृपा थी—हमारी माताओं तथा बहनों के प्रति। वे जानते थे, संसार में कितनी यंत्रणाएँ उन्हें सहन करनी पड़ती हैं। इसीलिए वे घन्टों

तक उनकी समस्याओं को धैर्यपूर्वक सुनते, आश्वासन देते, उन लोगों के दुःख का बोझ हल्का करते। उनका भोजन, विश्राम कुछ भी ठीक समय पर नहीं हो पाता था। यह देखकर हमलोग भी कभी-कभी विरक्त हो जाया करते थे। किन्तु उनका दरवाजा सदैव खुला रहता था।

उनके स्नेह का एक दृष्टान्त। रंगून से अचानक दो छोटी लड़कियाँ बेलुड़ मठ आ पहुँची। ठंड के दिन। चूँकि मैं पहले रंगून में था अतः पू० महाराज के एक संन्यासी सेवक ने (जो पहले रंगून में थे) मेरे पास उन्हें भिजवा दिया। मैं तो तमक उठा। भला मैं उन लड़कियों के लिए क्या कर सकता हूँ? क्या मैं पुरुषों के पहनने के वस्त्र दूँ? मैं तो उनकी कुछ भी सहायता नहीं कर पाऊँगा। क्यों इस विपद में उस सेवक ने मुझे डालदिया, यही सब सोचकर मैं बड़ा नाराज हुआ। अन्त में पू०महाराज जी के पास जाकर इन लड़कियों की बात कही। मुझे लगा मानो मैं लड़कियों की माँ से बात कर रहा हूँ। अपनें सेवक को बुलवा ट्रंक खोलकर प्रचुर मात्रा में गरम कपड़े उन लड़कियों के लिए दिये। साथ में कुछ नकद रुपये भी। इतना ही नहीं, बाद में भी उनकी सहायता के लिए उन्होंने रुपये भिजवाये थे। ऐसे कई उदाहरण हैं। अद्वितीय था लोगों के प्रति उनका दर्द। अद्भुत् थी उनकी करुणा।

अंतिम दिनों की ही बात है। अंतिम शय्या पर लेटे हुए, अत्यन्त अस्वस्थ होने के बाद भी, सुबह-शाम भक्तों को दर्शन देते रहे। अस्वस्थ होने पर भी उनका आदेश था कि भक्तों के दर्शन की व्यवस्था की जाय। इतना ही नहीं, जो भक्तगण दूर-दूर से आये थे तथा मठ के अतिथि-भवन में ठहरे थे, उनकी सूची उन्होंने मँगवायी। यह जानना चाहा कि कौन कब वापस लौट जायेंगे। उन लोगों को विशेष रूप से दर्शन दिया और अत्यन्त कष्ट के बावजूद कुछ-कुछ बातचीत भी उनसे की।

श्रीरामकृष्णदेव की जीवनी में हम पढ़ते हैं—श्रीरामकृष्णदेव की मृत्यु मानो 'एक कमरे से दूसरे कमरे में जाना था।' पू०वीरेश्वरानन्दजी का शरीर त्याग करना भी उसी प्रकार एक कमरे से दूसरे कमरे में जाना ही था।

वे अपनी मृत्यु के पहले हमलोगों के मन को इसके लिए किस प्रकार से तैयार कर रहे थे उसका एक उदाहरण देता हूँ। उनकी मृत्यु के पांच-सात दिनों के पहले की बात है। उनकी सुविधा के लिए उनकी पलंग को बदलकर 'फाउलर बेड' पलंग देने की व्यवस्था की गयी। पू० नरेश महाराज तथा अन्य लोग कमरे के बाहर 'फाउलर' पलंग को कमरे में ले जाने की व्यवस्था कर रहे थे। बाहर खटपट की आवाज सुनकर पू० महाराज ने पूछा—"क्या हो रहा है?" मानो कुछ जानते ही न हो! वैसे तो उनको पहले ही सब बताया गया था। फिर भी रसिकता करनी है न! इसलिए प्रश्न पूछा। मैंने उत्तर दिया, "कुछ नहीं, "फाउलर" पलंग को लाया जा रहा है ताकि आपको उठने-बैठने में सुविधा हो।" उन्होंने हँसकर कहा—"ओह! मैं तो समझा शवयात्रा की तैयारी हो रही है!" मैंने कहा—"नहीं, नहीं, महाराज, अभी तो आपको स्वस्थ होना है—कहाँ की शवयात्रा?"

उनके शरीर त्याग के डेढ़ घंटे पूर्व की घटना है। सेवक को बुलाकर पू० महाराज ने कहा—"देखो तो, बड़ा कष्ट हो रहा है।" पू० नरेश महाराज तथा डॉक्टर लोग आये और उन्हें देखने लगे। पू० महाराज ने उस अवस्था में भी चुटकी लेकर हँसते हुए कहा "देखो अप-डाउन, अप-डाउन (up down, up down) हो रहा है।" मैंने हँसकर कहा—"हाँ महाराज आपका स्वास्थ्य अप-डाउन, अप-डाउन चल रहा है।" क्योंकि दो घंटे पूर्व ही कलकत्ता के प्रसिद्ध चिकित्सक डा० क्षेत्री वगैरह जब उनकी स्वास्थ्य परीक्षा करने आये थे तब तो वे काफी अच्छे थे। पिछली रात को तो ऐसी गंभीर अवस्था हो गयी थी कि लगता था, कभी भी शरीर छूट जायगा। इस प्रकार मृत्यु के समय भी उनकी विनोदप्रियता कम नहीं हुई। श्री रामकृष्ण की भाँति ही आनन्दमय पुरुष थे वे। [शेषांश पृष्ठ २६ में]

पत्रावली

श्रीमाँ सारदा देवी का पत्र—परम पूज्य वीरेश्वरानन्दजी के नाम

[यह पत्र हाल ही में परम पूज्य वीरेश्वरानन्दजी महाराज की संचिका में पाया गया है। अंग्रेजी मासिक पत्रिका 'प्रबुद्ध भारत' से यह साभार गृहीत तथा अनूदित है।—सं०]

जयरामबाटी
अनुर, हुगली
४ जून, १९१७

प्रिय प्रभु,

तुम्हारा पत्र मिला। मेरे लाड़ले बेटे, मैं तुम्हें अच्छी तरह से याद करती हूँ। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि तुम साधु बन गये हो तथा मेरे प्रिय पुत्र राखाल (श्रीरामकृष्ण के पार्षद् स्वामी ब्रह्मानन्द) से तुमने ब्रह्मचर्य की दीक्षा प्राप्त की है। तुम्हें अभी मेरे पास आने की आवश्यकता नहीं है। राखाल के निर्देश का पालन करो। मुझे आशा है, उनकी (श्री रामकृष्णदेव की) कृपा से तुम इन सभी कठिनाइयों को पार कर लोगे। उनसे प्रार्थना करो, वे तुम पर कृपा करेंगे। प्रतिदिन नियम पूर्बक ध्यान करने की चेष्टा करो। तुम क्रमश: प्रगति करोगे। बेटा, निराश मत होओ। मुझे यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि नया मठ (मद्रास) में शुरू हो गया है। मैं आशा करती हूँ कि वह ठीक समय में बन जायगा।

मैं अच्छी हूँ। मैं तुम्हें स्नेह पूर्वक आशीर्वाद देती हूँ। तुम जब चाहो, मुझे पत्र लिख सकते हो। तुम बंगला नहीं जानते, इसके लिए दु:खी मत होना।

तुमको तथा मठ के अन्य पुत्रों को स्नेहाशीष।
प्रिय बेटे, मैं हूँ,
तुम्हारी माँ।

पुनश्च :—तुम अंग्रेजी में लिख सकते हो, किन्तु साफ-साफ लिखना।

□

BLESSINGS FROM SWAMI VIRESHWRANANDA

RAMAKRISHNA MATH
P.O. BELUR MATH, DT. HOWRAH
PIN—711 202
Camp : New Delhi
28.11 81

Phone : 66-3619

My dear Labh,

Received your letter of the 30th October.

I am glad to know about your starting a magazine. I wish your endeavour all success.

Trust this finds you in health and spirits.

With love and best wishes,
Yours affectionately,
Vireshwarananda.

Dr. Kedarnath Labh,
Ramakrishna Nilayam,
Jaiprakash Nagar,
CHAPRA.

पू० वीरेश्वरानन्दजी की विवेक शिखा के लिए शुभकामना

(मूल अंग्रेजी पत्र का अनुवाद)

रामकृष्ण मठ
पो० बेलुड़ मठ, जिला, हावड़ा
पिन—७११ २०२
कैम्प : नयी दिल्ली
२८-११-८१

फोन : ६६-३६१९

प्रिय लाभ,

३० अक्टूबर का तुम्हारा पत्र प्राप्त हुआ। तुम एक पत्रिका का प्रकाशन करने जा रहे हो, यह जानकर मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हारे प्रयत्नों की पूर्ण सफलता की मैं कामना करता हूँ।

विश्वास है कि तुम स्वस्थ और सोत्साह हो।

प्रेम और शुभेच्छाओं सहित,
सस्नेह तुम्हारा,
वीरेश्वरानन्द

डॉ० केदारनाथ लाभ
रामकृष्ण निलयम्,
जयप्रकाश नगर,
छपरा।

दि. १४/२

प्रिय नवनी,

मुझे तुम्हारा दि. ३० जनवरी का पत्र समयानुसार मिला, जिसमें श्री श्रीठाकुर के उत्सव के लिए २१ रु० का ड्राफ्ट/चेक भी संलग्न थ ।— — —

कुछ समय प्रतिदिन नियमित रूप से उपासना में लगी रहो । तब तुम्हें जप तथा ध्यान में आनन्द मिलेगा । शुरू में, कभी-कभी यह रूखा लगेगा, किन्तु तुम्हें धैर्य तथा अध्यवसाय के साथ आगे बढ़ते रहना होगा, क्योंकि उन्नति का यही एकमात्र उपाय है । अभ्यास तथा वैराग्य ये दो ही एकाग्रता पाने के रास्ते हैं । गीता तथा पातंजल योगसूत्र दोनों एक ही उपाय का निर्देश करते हैं । नियमित अभ्यास तथा मन की पवित्रता । विवेक के द्वारा तुम्हें जान लेना होगा, कौन सी वासनाएँ तुम्हारे मन में छिपी हुई हैं जो तुम्हारी एकाग्रता भंग करती हैं एवं बाद में तुम्हें उन वासनाओं को दूर करना होगा । वासनाएँ ही मन को चंचल करती हैं तथा हमें भगवान के स्पष्ट दर्शन पाने से रोकती हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे पानी की चंचल लहरें चन्द्रमा की धुँधली या विकृत परछाईं को दर्शाती हैं ।

आशा करता हूँ, तुम तथा अनीता स्वस्थ एवं प्रसन्नचित्त हो । मैं स्वस्थ हूँ ।

स्नेह एवं आशीर्वाद के साथ
इति, सस्नेह,

तुम्हारा
वीरेश्वरानन्द

दि. ११/८/६९

अनीता,

तुम्हारा मद्रास से लिखा दि. २७/७ का पत्र यथासमय मिला । मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि तुम्हारी मद्रास की यात्रा फलदायक रही । आशा करता हूँ, तुम राँची वापस लौट चुकी हो तथा अपने कार्य में गंभीरता से लग गयी हो । मेरे आशीर्वाद सभी समय तुम्हारे साथ तथा तुम्हारे सब कार्यों में हैं । श्रीमती राय चौधरी ने भी मुझे तुम्हारे बारे में बताया है । श्रीरामकृष्णदेव के भक्त एक विश्वव्यापी परिवार के सदस्य हैं जिसमें जाति, सम्प्रदाय देश तथा भाषा के भेद का कोई स्थान नहीं है । ऐसे भक्तों के संसर्ग में आना अपने आप में एक अनुभव है और यह हमें परीक्षा रूप से श्रीरामकृष्णदेव तथा उनके संदेश की महत्ता का स्पष्ट अनुभव करा देता है ।

मैं स्वस्थ हूँ । आशा करता हूँ, तुम तथा नवनी स्वस्थ हो । तुम दोनों को मेरे स्नेह तथा आशीर्वाद । पिछले वर्ष इस समय मैं तुम लोगो के साथ राँची में था ।

इति, सस्नेह, तुम्हारा
वीरेश्वरानन्द

दि. १४।२

प्रिय अनीता,

तुम्हारा दि. २६ अगस्त ६८ का पत्र यथासमय मिला। आशा करता हूँ, इसका उत्तर देने में शायद काफी शीघ्रता हुई है ! तुम्हारा पत्र पाने के बाद तुमने मुझसे दो बार भेंट की है—बनारस तथा बेलुड़ में। अतः उत्तर देने में मैं जल्दी में नहीं था, क्योंकि अपनी कठिनाइयों के बारे में तुमने मौखिक रूप से चर्चा करली थी।

जप करते समय तुम्हें मंत्र को दुहराना है, उसकी गिनती रखनी है तथा साथ ही साथ हृदय में अपने इष्टदेव के स्वरूप का ध्यान रखते हुए उन पर मन को एकाग्र भी करना है, जैसा कि उपासना की पुस्तिका में बताया गया है। ये सभी चीजें एक साथ होने पर तुम्हारे मन को बहिर्मुखी होने से बचाएँगी। १०८ जप की गिनती करने के बाद यदि तुम देखो कि गिनती रखने से मन विक्षेपित हो रहा है, तो गिनती रखने की आवश्यकता नहीं, मंत्र का जप कुछ समय मन ही मन करना तथा अपने इष्टदेव पर मन को एकाग्र करना। यह शायद तुम्हारे लिए संभव होगा। इष्ट पर मन को एकाग्र करना गिनती की अपेक्षा अधिक महत्त्व का है। यदि तुम्हें यह जानने का कुतूहल है कि तुमने कितना जप किया, तो तुम इसे समय द्वारा गिन सकती हो। मान लो तुमने आधे घंटे तक जप किया है और यदि तुम्हें १०८ बार जप करने में दो मिनट समय लगता है तो तुम समझ सकती हो कि तुमने १०८ का १५ गुना जप किया है।

इष्ट बाहर की ओर देख रहे हैं ऐसा चिन्तन करने में तम्हारी जो कठिनाई है, उसे दूर करने के लिए तुम्हें क्या करना चाहिए यह मैंने तुम्हे यहाँ समझा दिया था। आशा करता हूँ अब तुम यह कठिनाई महसूस नहीं कर रही हो।

दर्शनशास्त्र पढ़ना तुम्हें अच्छा लगे या नहीं, तुम्हें अपनी पी-एच० डी० पूरी कर लेनी होगी, बाद में यदि तुम्हें रूखा लगे, तो इसे पढ़ना बन्द कर सकती हो।

पत्र के अन्त में तुमने लिखा है कि, "अपनी सुविधानुसार उत्तर दीजिएगा"। और यह सुविधा आज ही हुई ! !

अब तुम्हारे २४।१२ के पत्र के सम्बन्ध में। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि तुम सभी ने श्रीमाँ सारदादेवी के जन्मोत्सव पर आनन्द मनाया। मैं आशा करता हूँ कि तुम-लोगो को, सारदा संघ की पाक्षिक बैठकों के लिए दुर्गा बाड़ी का कमरा स्थायी रूप से मिल गया होगा।

मैं काफी स्वस्थ हूँ। आशा करता हूँ, तुम दोनों स्वस्थ एवं प्रसन्न हो।

स्नेह एवं आशीर्वाद के साथ,
इति, सस्नेह, तुम्हारा
वीरेश्वरानन्द

*

एक जीवन : एक प्रशस्ति

—स्वामी अब्जजानन्द

सहसम्पादक, उद्बोधन, कलकत्ता।

[स्वामी अब्जजानन्दजी रचित एवं बंगला मासिक 'उद्बोधन' के चैत्र, १३९१ के अंक में 'एक टि जीवन : एक टि प्रशस्ति' शीर्षक से प्रकाशित निबंध का हिन्दी रूपान्तर—सं०।]

'हमलोग शास्त्र में पढ़ते हैं, अतीन्द्रिय समाधिभूमि से जब साधक स्वाभाविक अवस्था में लौट आते हैं तब द्वैत जगत का ज्ञान रहने पर भी उसके प्रति उनको फिर कोई आसक्ति नहीं रह जाती, क्योंकि विश्वप्रपंच मायिक है—इसका उन्हें पक्का बोध हो गया है। श्री श्रीमाँ के सान्निध्य में कुछ क्षण व्यतीत करने पर उपर्युक्त अनुभूति का ही मानो एक आभास मिलता था। नम्रता, करुणा और प्रेम की जो प्रतिकृति थीं, दुःख से आर्त प्राणी को देखकर जिनकी आँखों से अव्यक्त मर्मवेदना फूट पड़ती थी, जिनका प्रेम साधु और पतित का भेद करना नहीं जानता था और जिनकी अपरिमेय प्रशान्त पवित्रता का अजेय प्रभाव था—ऐसी एक नारी के समीप बैठ पाने पर कैसा आनन्द और शान्ति मिलती थी! इस लोकोत्तर आध्यात्मिक शक्ति के निकट जिन लोगों ने स्थिर भाव से आत्मसमर्पण किया था, उन्होंने देखा था कि उन लोगों ने कठिन जटिल व्याधि—विषय-भोग की तृष्णा—से प्रचुर परिमाण में आरोग्य-लाभ किया है। इन्द्रिय-सुख जैसे स्वादहीन प्रतीत होने लगा है—जीवन अब एक निरुद्देश्य यात्रा नहीं होकर एक गंभीर उद्देश्य और मूल्य वहन करने लगा है। जो आत्मा निद्रा से अचेतन पड़ी थी वह जैसे जग-उठकर अनन्त का सुदूर किन्तु सप्रेम आह्वान सुनने लगी है, सुनकर उसके निकट पहुँचने के लिए व्याकुल हो रही है। कैसा अद्भुत रूपान्तर है!'

उद्धृत बातें श्री श्रीमाँ के विषय में लिखित उनकी ही एक प्रिय सन्तान की प्रशस्ति है, जो हृदय में गहन रूप से दबे एक निर्झर से स्वतः उद्भूत हुई है। 'जो आत्मा निद्रा से अचेतन पड़ी थी वह जैसे जग उठ कर अनन्त का सुदूर एवं सप्रेम आह्वान सुनने लगी है, सुनकर उसके निकट पहुँचने के लिए व्याकुल हो रही है'—व्यक्त हृदय-निर्झर का यही सटीक वर्णन है—उत्स और उद्देश्य की अपूर्व व्यंजना है—जगन्माता सारदा की प्रकृष्टतम वन्दना है। नहीं, केवल यही नहीं! 'कैसा अद्भुत रूपान्तर', मात्र इन तीन शब्दों में एक आश्चर्यमय आत्मचरित की कथा भी इस प्रशस्ति के द्वारा अभिव्यक्त हुई है। प्रशस्तिकार की निजी जीवनानुभूति ने ही उल्लिखित कथाओं में प्रस्फुटित होकर अत्यन्त स्वाभाविक भाव से इन्हें एक सार्थक आत्मकथा का रूप दिया है। प्रशस्ति के प्रसंग में जो कहने की चेष्टा हुई है—वह वस्तुतः एक अनवद्य 'अद्भुत रूपान्तर' की कहानी है। उस 'रूपान्तर' के साक्षी प्रशस्तिकार स्वयं हैं। श्री श्रीमाँ की अन्यतम विशिष्ट सन्तान स्वामी वीरेश्वरानन्द ने श्री श्रीमाँ का संसर्ग प्राप्त कर उस सम्बन्ध में एक दिन जो लिखा था, वह अत्यन्त आश्चर्यमय मातृ वन्दना होने पर भी बाद में लेखक का संक्षिप्त आत्मचरित हो गया। हम लोगों ने उनका जीवन वृत्त देखा है—उक्त मातृ-महिमा का ही उज्वल प्रमाण—पूर्व कथित अद्भुत रूपान्तर का ही एक नीरव उदाहरण है वह। श्रीरामकृष्ण

संघाधीश स्वामी वीरेश्वरानन्दजी की प्रकृष्ट एवं संक्षिप्त आत्मकथा, उनके द्वारा उल्लिखित मातृ-प्रशस्ति के माध्यम से ही हमलोग जानते हैं।

रूपान्तर हुआ सिलसिलेवार क्रम से—जैसे एक के ऊपर एक पंखुड़ी के मिलते-मिलते फूल खिल पड़ता है। निश्चय ही प्रारम्भिक कारण के रूप में धूप, ओस आदि की अनुकूलता भी अवश्य रहती है। १८९२ ई० के ३१ अक्टूबर को कर्नाटक के गुरुपुर नगर में एक मध्यवित्त ब्राह्मण के घर में जिस शिशु का जन्म हुआ था—उस पांडुरंग प्रभु के जीवन-कुसुम की पंखुड़ियाँ भी विकसित हुई थीं क्रम-क्रम से—विचित्र कारण परम्परा से, जिसने उनको बाद में रूपान्तरित किया है—वर्त्तमान विश्व के अन्यतम धर्म-गुरु के रूप में—असंख्य जिज्ञासुजनों के पथ के दिशा निर्देशक के रूप में—संसार-तापित मनुष्यों के सान्त्वना दाता के रूप में—अध्यात्म जीवन की उज्वल आदर्श-मूर्ति में। नवजात स्वामी वीरेश्वरानन्दजी के दीर्घ तीन वर्षों की जीवन-धारा एक अति आश्चर्यमय भगवत्-प्रशस्ति का ही शारीरिक रूप है। जिस प्रकार अदृश्य ओसकण किसी कुसुम-कलिका को फूल के रूप में प्रस्फुटित कर देते हैं,—पांडुरंग प्रभु को स्वामी वीरेश्वरानन्द के रूप में परिणत करने में भी सबकी अगोचर विचित्र करुणा के ओस विन्दु भी उसी प्रकार क्रियाशील थे। शिशु पांडुरंग के ऊपर युगाचार्य स्वामी विवेकानन्द का दृष्टिपात ही संभवत: प्रथम शिशिर विन्दु था जिसने उनके जीवन की पंखुड़ियों को अभि-सिंचित कर भविष्य में खिलने की अनुकूलता प्रदान की। बाद में उन्हें इस घटना का स्मरण कराने पर, वे सहास्य उत्तर देते—'मैंने स्वामीजी को देखा है, ऐसी मेरी कोई धारणा नहीं है। तथापि स्वामीजी ने मुझे देखा था।' आध्यात्मिक तात्पर्य-मंडित, किन्तु प्राय: अज्ञात उस घटना का स्मरण नहीं करना इतिहास की अमर्यादा होगी। वह इस प्रकार है:

१८९७ ई० के फरवरी माह में स्वामीजी जब मद्रास के कैसल-कार्नान में टिके हुए थे, तब पांच-वर्षीय बालक पाण्डु रंग उनके चरणों के स्पर्श लाभ से धन्य हुए थे। पिता के साथ स्वामीजी के चरण-कमलों में उपनीत होने की गौरवपूर्ण स्मृति, बड़े होने पर उन्होंने पिताजी के मुख से ही सुनी थी। और यह भी सुना था कि स्वामीजी ने मनोयोगपूर्वक उनके दोनों कोमल करों में 'लजेन्स' का उपहार भी दिया था। जगद्गुरु विवेकानन्द ने, लगता है, इस भाव से ही अपना अमोघ सुमधुर आशीर्वाद शिशु पाण्डुरंग प्रभु के कोमल करद्वय में रख दिया था—जिसका स्पष्ट सुफल बाद में प्रभु महाराज के जीवन में—गुरुशक्ति के विस्मयकारी प्रकाश तथा भक्ति, योग, ज्ञान और कर्म के मनोहर विकास में संसार ने देखा है।

सांसारिक माता-पिता का स्नेह पाण्डुरंग ने अल्प काल तक ही प्राप्त किया था—माँ को मात्र पाँच बर्ष की उम्र में ही खो दिया और पितृ-वियोग उन्हें हुआ—दस वर्ष की उम्र के पहले ही। मामा के घर में लालित पालित बालक अपनी मेधा और शक्ति के बल पर ही बढ़ते रहे। छात्र की दृष्टि से मेधावी के रूप में परिचित पाण्डुरंग ने मात्र विद्यालय या कॉलेज के पाठ्य विषयों की चारदीवारी में ही अपने को आबद्ध नहीं रखा—खेलकूद एवं पाठ्य ग्रंथों के अतिरिक्त अन्य पुस्तकादि के अध्ययन में भी उनके असाधारण उत्साह और आग्रह ने उनको तत्कालीन छात्र समाज में यथेष्ट ख्याति प्रदान की थी। मद्रास के प्रेसिडेन्सी कॉलेज की क्रिकेट टीम के वे विशिष्ट प्रतिनिधि थे। बी० ए० करने के बाद जब वे वकालत पढ़ते थे, वस्तुत: उसी समय उनके जीवन के रंगमंच के पटों में तेजी से परिवर्तन हुआ। इसके पूर्व लिखित 'रूपान्तर' का सूचनापर्व मानो उनके जीवन का यह स्नातकोत्तर वर्ष ही है। इस प्रसङ्ग में उनके अपने मुख से कथित स्मृति इस प्रकार है:

'बी० ए० की परीक्षा के बाद मंगलोर आया हूँ। हमलोग तीन मित्र साथ-साथ शाम को कनाडा हाई स्कूल में टेनिस खेलने जाते। एक दिन टेनिस खेलकर लौट रहा हूँ। एक मित्र रास्ते में अपने चाचा के घर गया, चाचा के पुस्तकालय से एक पुस्तक लाने। पुस्तक मैंने ही चाही थी। किन्तु मेरे सौभाग्य से उस समय

पुस्तकालय में वह पुस्तक नहीं मिल पाने से मित्र मेरे लिए एक दूसरी पुस्तक लेकर आता है। पुस्तक थी स्वामी विवेकानन्द साहित्य (अंग्रेजी में) का प्रथम खण्ड। उक्त पुस्तक को मैंने पहले देखा और उसे पढ़ने का मुझे कोई आग्रह भी नहीं था। लेकिन मित्र ने जोर देकर उस पुस्तक को पढ़ने का मुझसे बार-बार अनुरोध किया। निरुपाय हो पुस्तक मैंने ली। किन्तु बिना पढ़े उसे घर में रख दिया। इधर मित्र भी था नाछोड़ बन्दा। रोज ही वह मुझसे जिज्ञासा करता कि मैं वह पुस्तक पढ़ता हूँ या नहीं। बाद में एक दिन उसे खुश करने के लिए ही वह पुस्तक मैंने खोली और पढ़ने में वह इतनी अच्छी लगी कि सारी पुस्तक ही मैंने पढ़ डाली। पुस्तक पढ़ने पर आग्रह इतना बढ़ गया कि मैंने सीधे मायावती पत्र लिख डाला। वहाँ से उत्तर दिया स्वामी प्रज्ञानन्दजी ने। वे उन दिनों अद्वैत आश्रम के अध्यक्ष थे। उन्होंने मुझे मद्रास मठ का पता देकर वहां से सम्पर्क करने का परामर्श दिया। कॉलेज में पढ़ने के समय मद्रास मठ की बगल में रहने पर भी मठ के सम्बन्ध में उस समय तक मैं जानता नहीं था।'

१९१४ ई० की यह बात है। मद्रास मठ ही हुआ था उनके लिए श्रीरामकृष्ण के राज्य में प्रवेश करने का प्रथम तोरण द्वार। मद्रास मठ के तत्कालीन अध्यक्ष स्वामी शर्वानन्द के स्नेहपूर्ण तत्त्वावधान में नवीन जिज्ञासु के अन्तःकरण में नये क्षितिज की आलोक-रेखा फूट पड़ी। कानून के अध्ययन को अधूरा छोड़कर ही युवक पाण्डुरंग ने शीघ्र संसार का त्यागकर मद्रास मठ में आकर योगदान किया। तब उनकी उम्र थी चौबीस वर्ष—सन् १९१६ ई०, तदुपरान्त शर्वानन्दजी ने उन्हें बेलुड़ मठ भेज दिया। बेलुड़ मठ में श्रीरामकृष्ण के पार्षदों में सबसे पहले दर्शन हुआ था महापुरुष—स्वामी शिवानन्दजी का। इतने दिनों तक के स्व-स्थान एवं स्वजन के परिवेश से मुक्त-जीवन के आनन्द-प्रवाह में आ जाने पर नये प्राण-स्पन्दन का उन्होंने अनुभव किया। श्रीरामकृष्ण के लीला-पार्षदों में से अधिकांश-जनों की स्नेह-दृष्टि ने उनके जीवन को असाधारण रूप से गढ़ने में प्रचुर सहायता की थी—वस्तुतः उस प्रभाव-विकिरण की सूचना उसी समय से मिलने लगी। श्री श्रीमातृ चरण के निकट उपस्थित होने का पुण्य संयोग भी इसी समय मिला। प्रेमानन्दजी महाराज ने ही उन्हें जयरामबाटी में माँ के निकट भेजा था। परवर्ती काल में वे स्वयं कहा करते थे—'जहाँ तक स्मरण होता है, वह १९१६ ई० का जून महीना था। एक सज्जन जयरामबाटी जा रहे थे। स्वामी प्रेमानन्दजी ने उनके साथ मेरा परिचय करा दिया। श्री श्रीमाँ के नाम एक पत्र भी लिख दिया उन्होंने। हमलोग जयरामबाटी की राह पर चल निकले।' उनके संस्मरण से पता लगता है कि उस समय दुर्गम यात्रा में कलकत्ता से जयरामबाटी पहुँचने में तीन दिन लगते थे। आरामबाग आकर द्वारकेश्वर नदी को पार करने के लिए नाविक नहीं मिलने से उन लोगों को उस नदी के बालुकामय तट पर उन्मुक्त आकाश के नीचे रात काटनी पड़ी थी। सुबह होने पर द्वारकेश्वर पारकर पाँव-पैदल पहले कामारपुकुर आये एवं वहाँ से श्री श्रीठाकुर के भतीजे शिबू दा के साथ जयरामबाटी के पथ पर रवाना हुए थे। अपराह्न के चार बजे वे तीनों श्री श्रीमाँ के पाद-पद्मों के निकट उपस्थित हुए थे। उनका उस समय का स्मृति-प्रसंग :

'माँ तब अपने "पुराने घर' में रहती थीं।...... माँ बरामदे में बैठकर रात की रसोई के लिए तरकारी काट रही थीं।...... हमने माँ को प्रणाम किया। मेरे साथी सज्जन ने माँ को स्वामी प्रेमानन्दजी की चिट्ठी की बात कही। माँ ने एक ब्रह्मचारी को बुलाकर चिट्ठी पढ़कर सुनाने को कहा। चिट्ठी पढ़ने पर माँ ने कहा, "अच्छा, कल ही उन लोगों की दीक्षा होगी।" हमलोग "नये घर" के बैठकखाने में लौट आये।......दूसरे दिन सवेरे ठाकुर की पूजा समाप्त कर माँ ने हमलोगों को एक-एक कर अपने घर में बुलाया। हमलोगों की दीक्षा हो गयी।'

इस प्रकार ही श्रीरामकृष्ण के कुल में उनका दिव्य जन्म हुआ था—तभी से सद्योजात बालक के जीवन चक्र

ने भी नवीनतर गति-वेग से घूमना शुरू किया था। जयरामबाटी में माँ की घनिष्ट निकटता में—श्री श्रीमाँ के चरणों की छाया में जिस अनिर्वचनीय अनुभूति का स्वाद उन्हें मिला, उसे उन्होंने अपने सम्पूर्ण जीवन का पाथेय बना लिया था। लगता है, उनके द्वारा रचित मातृ-प्रशस्ति में उन कुछ दिनों की स्मृति ही प्रतिफलित हुए हैं।'......जिनकी अपरिमेय प्रशान्त पवित्रता का अजेय प्रभाव था, ऐसी एक नारी के समीप बैठ पाने पर कैसा आनन्द और शान्ति मिलती थी!' इसी 'आनन्द और शान्ति' को लेकर वे बेलुड़ मठ लौट आये थे। निश्चय ही थोड़े ही दिनों के बाद वे पुनः मद्रास मठ में ही भेज दिये गये थे—जहाँ अपने स्वाध्याय-साधन आदि के अतिरिक्त ठाकुर-सेवा से आरंभकर मठ के सारे कार्यों के साथ स्वयं को संयुक्त करने का अपूर्व संयोग उन्होंने पाया था। उनके ही शब्दों में, 'जूता सीने से लेकर चण्डीपाठ तक हर प्रकार का काम करना पड़ता था।' रसोइये की अनुपस्थिति में रसोईघर का कार्यभार जिस प्रकार वहन करते—प्रकाशन विभाग में 'पैकिंग,' हिसाब-किताब देखना,—गोशाला में गाय की सेवा—सब्जी के खेत या फूल बागान के सारे कार्य भी उन्हें उसी प्रकार एकान्त निष्ठा के साथ करते देखा जाता था।

इस मद्रास मठ में ही स्वामी ब्रह्मानन्द महाराज (श्रीरामकृष्ण के अन्यतम लीला-पार्षद् एवं रामकृष्ण मिशन और मठ के प्रथम अध्यक्ष) की घनिष्ठ सेवा करने का सौभाग्य उन्हें प्राप्त हुआ था। राजा महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द) ने अपने प्रिय-सेवक प्रभु को एक दिन अत्यन्त आदर के साथ निकट बुलाकर कहा था—'अरे प्रभु! मैं तुम्हें वस्तुतः प्रभु बना दूँगा।' श्री श्रीमहाराज ने अपने इस आशीर्वाद को वस्तुतः क्रियान्वित किया था,—श्रीरामकृष्ण संघ के अध्यक्ष 'प्रभु महाराज' को देखकर बाद में लोग निश्चय ही इस तथ्य का बोध कर सके हैं। प्रसंगतः यह उल्लेख करने के योग्य है कि स्वामी माधवानन्द जब रामकृष्ण मठ और मिशन के प्रधान सचिव एवं प्रभु महाराज उनके अन्यतम सहकारी थे, उस समय माधवानन्दजी को कई बार रहस्यपूर्ण ढंग से यह कहते सुना जाता था: 'हमारे दो प्रभु हैं। एक प्रभु मन्दिर में हैं—और एक व्यक्ति यहीं आस-पास ही हैं।''

१९१७ ई० में श्रीरामकृष्ण के जन्मोत्सव के दिन स्वामी ब्रह्मानन्द महाराज ने तरुण पांडुरंग को ब्रह्मचर्य व्रत में दीक्षित किया। नाम दिया था—ब्र० सिद्धचैतन्य। बाद में १९२० ई० में श्रीवीरेश्वर विवेकानन्द-स्वामीजी के आविर्भाव-दिवस के पुण्य ब्राह्मक्षण में, रामकृष्ण मठ, भुवनेश्वर में ब्रह्मानन्द महाराज ने ही ब्रह्मचारी सिद्धचैतन्य को स्वामी वीरेश्वरानन्द में रूपान्तरित किया था—उन्हें संन्यास प्रदान किया था। इसके बाद स्वामी वीरेश्वरानन्द को संघ के बृहत्तर कर्मक्षेत्र अथवा व्यापकतर साधन परिमण्डल में कार्यरत देखा गया है। किन्तु जहाँ जिस रूप में ही वे रहते थे—सभी अवस्थाओं में उनकी जीवनचर्या थी परम जागरूक कर्मयोगी की, परम निष्ठावान भक्त की एवं विचार-प्रवण तत्वान्वेषी की। भुवनेश्वर के बाद उन्हें काफी दिनों तक वाराणसी में रहना पड़ा था—वहाँ के सेवाश्रम और श्रीरामकृष्ण अद्वैत आश्रम में। वाराणसी के दिन उनके लिए आजीवन पुण्यस्मृति के हो गये थे—कारण, वहीं उन्होंने स्वामी तुरीयानन्दजी की प्रचुर निकटता पायी थी। स्वामी तुरीयानन्दजी का प्रसंग उपस्थित होने पर वीरेश्वरानन्दजी को बाद में भी आवेग से उद्दीप्त होते देखा जाता था।

श्री श्रीमाँ की अन्तिम अस्वस्थता के समाचर ने वीरेश्वरानन्द को अत्यन्त विचलित कर दिया था—काशीधाम से कलकत्ता आने से वे अपने को रोक नहीं सके। श्री श्रीमाँ की महासमाधि के वे प्रत्यक्षद्रष्टा थे। बेलुड़ मठ में जगन्माता के पार्थिव शरीर के अग्नि में आहूत होने के समय की अलौकिक घटनाओं को अपनी आँखों से उन्होंने जिस प्रकार देखा था—वे सारी स्मृतियाँ अत्यन्त यत्नपूर्वक उनके हृदय के मणि-मन्दिर में सुरक्षित थीं। परवर्ती काल में इन सब प्रसंगों की कोई बात उठने पर वे कहते—'सुनने में अस्वाभाविक और अलौकिक प्रतीत होने पर भी यह घटना वास्तविक

है।......इस घटना का मैं प्रत्यक्षदर्शी हूँ।' मातृ-भक्त वीरेश्वरानन्द बहुत दिनों तक माँ की कथा और प्रसङ्ग से अभिभूत हो जाते—उन्हें जिन लोगों ने इस प्रकार के किसी परिवेश में देखने का सुयोग पाया है, वे सब यह जानते हैं। वृद्धावस्था में भी बेलुड़ मठ में, उद्‌बोधन (मायेर बाड़ी) में, जयरामबाटी में—किसी भी मातृतीर्थ में, माँ के मन्दिर के द्वार पर अथवा उनके चित्र या मूर्त्ति के सम्मुख उनका वह दर्शन-व्याकुल सन्तान रूप वस्तुत: अविस्मरणीय है—भक्त के चित्त में प्रेरणा संचारक है। श्री श्रीमाँ की स्थूल देह के दर्शन की स्मृति से वे कितने विह्वल हो उठते—इसे इस प्रकार की किसी प्रासंगिक कथा-वार्ता में यदि कोई उपस्थित रहे हों तो उन्होंने निश्चय ही प्रत्यक्ष रूप से देखा है। वे आवेगाकुल कण्ठ से कहा करते थे कि श्री श्रीमाँ के स्थूल शरीर के समाप्त होने के ठीक थोड़ा पहले महापुरुष महाराज ने समीपवर्ती सभी लोगों को बुलाकर सूचित कर दिया था: 'सब कोई अभी माँ को भली-भाँति अंतिमबार की तरह दर्शन कर लो। इसके बाद ध्यान में कभी दो-एक क्षण के लिए ही उनका दर्शन पाओगे।'

१९२१ ई. के प्रथमार्ध तक वीरेश्वरानन्द वाराणसी में थे। इसी अवधि में स्वामी ब्रह्मानन्द महाराज के काशी आगमन पर, उनके साहचर्य एवं सेवा का सुयोग उन्होंने फिर पाया। स्वामी शुद्धानन्दजी भी उस समय काशीधाम में ही थे—इसी से वीरेश्वरानन्द को स्वामीजी की एक अतिप्रिय सन्तान के घनिष्ठ साहचर्य में रहकर स्वामीजी के चिन्तन और भावराशि के साथ चाक्षुष परिचित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। शुद्धानन्द महाराज की भी स्नेह दृष्टि वीरेश्वरानन्द के ऊपर उन दिनों जैसी थी—बाद में वह क्रमश: और प्रगाढ़ हो गयी। स्वामी शुद्धानन्द के विशेष विश्वासभाजन और पदानुगामी के रूप में वीरेश्वरानन्द के उत्तरकालीन परिचय से संघ के सबलोग सुविदित थे। उनके मुख से कई बार सुना गया है: 'हमलोग जब मठ में आये थे, तब एक बड़ा सुयोग हमलोगों ने पाया था,—जिसे तुमलोग अभी सोच भी नहीं सकते हो। स्वामीजी की पुस्तकें पढ़ते, स्वामीजी का भाव समझने की चेष्टा करते—कहीं कोई असुविधा होने पर स्वामीजी के भावों की जो जीवन्त व्याख्या थे, उनके ही निकट चले जाते। वे सभी हमलोगों की सहायता करते। सुधीर महाराज (स्वामी शुद्धानन्द) आदि हमलोगों की सहायता करने के लिए, स्वामीजी की बात समझाने के लिए, सदैव उन्मुख रहते। इन लोगों की तो आँखों के सामने ही थे---केवल हेराफरी करते। चेष्टा करके, ढूँढ़कर देखने की आवश्यकता होती नहीं—बल्कि वे लोग ही हमलोगों को ढूँढ़ने निकलते।' स्वामी शुद्धानन्द के साहचर्य के प्रभाव से वीरेश्वरानन्दजी का जीवन कितना आलोकित था, इसका ज्ञान तब होता था जब जीवन के अन्तिम दिनों में भी उन्हें शुद्धानन्दजी की रचना या जीवन-चरित विषयक एक प्रामाणिक पुस्तक के लिए अतिशय आग्रह प्रकट करते हुए देखा जाता था। काशीधाम के उन बीते दिनों की स्मृति की चर्चा करते-करते उन्होंने एकाधिक बार कहा था, एक बार स्वामी ब्रह्मानन्द महाराज की आज्ञानुसार उनके द्वारा ही दी गयी पुष्पमालाओं आदि के द्वारा शुद्धानन्दजी को सुन्दर ढंग से सजाकर खोल-करताल आदि बाजाओं के साथ उन्हें घेरकर काशी के दोनों आश्रमों के साधु-ब्रह्मचारियों ने कीर्तन-भजन और नृत्य आदि किये थे। राजा महाराज स्वयं उस दृश्य में उपस्थित थे एवं हँसते हुए आनन्द से विभोर हो गये थे।

१९२१ ई० में वीरेश्वरानन्दजी को वाराणसी के आनन्द कानन से हिमालयस्थ मायावती के अद्वैत आश्रम में जाना पड़ा। उनके जीवन का यह मायावती-अध्याय अत्यन्त विशिष्टता पूर्ण—कई कारणों से स्मरणीय था। अद्वैत आश्रम के इतिहास में भी यह अध्याय विशेष गौरव का अधिकारी है। दीर्घ सोलह वर्षों का कालव्यापी यह अध्याय रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य तथा भावधारा के प्रचार के क्षेत्र में विशेष उल्लेख योग्य है। अंग्रेजी मासिक पत्रिका 'प्रबुद्ध भारत' तथा अद्वैत आश्रम से प्रकाशित तत्कालीन पुस्तकें इसकी गवाह हैं। अद्वैत आश्रम में वीरेश्वरानन्दजी को विभिन्न कार्यों का भार लेना पड़ा—साधारण सेवक से शुरू कर अध्यक्ष की

मर्यादा-अवधि तक उन्हें समान रूप से दक्ष और कार्य-कुशल देखा गया है। १९२७ से १९३७ तक वे अद्वैत आश्रम के अध्यक्ष के पद पर नियुक्त थे। इस बीच १९२९ ई० में वे बेलुड़ मठ के ट्रस्टी (न्यासी) एवं रामकृष्ण मिशन की प्रशासन समिति के सदस्य निर्वाचित हुए।

स्वामी वीरेश्वरानन्द का मानसिक गठन था—कर्म-भक्ति-ज्ञान-ध्यान के समवेत साधन के लिए प्रयास करनेवाला। इसीलिए उनका कर्ममय जीवन एकान्त भाव से मनन-निदिध्यासन आदि के लिए निरन्तर अवसर खोजता रहता। बाद में १९३७ ई० में वह वांछित अवसर मिला था—इसके बाद एक वर्ष से अधिक समय तक उन्हें निरवच्छिन्न रूप से ध्यान-भजन एवं स्वाध्याय तथा चिंतन आदि में निमग्न देखा गया, हृषीकेश के मायाकुण्ड में—गंगा के तट पर एक शान्त-एकान्त कुटीर में। मधुकरी या क्षत्र भिक्षा के द्वारा किसी प्रकार शरीर-यात्रा का निर्वाहकर, एकान्त निविष्ट चित्त से इस काल में वे तपस्या और शास्त्र चर्चा में निमग्न थे। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता पर श्रीधर स्वामी की टीका के अँग्रेजी अनुवाद का कार्य भी उनके इस काल के नियमित स्वाध्याय का अंगीभूत कार्य था। हृषीकेश के मायाकुण्ड ने उनकी तपस्या की स्मृति को कितनी सघन आत्मीयता से ग्रहण किया था, यह इस तथ्य से जाना जा सकता है कि उनके चले आने के बाद पच्चीस-तीस वर्ष बीत जाने पर भी उनके द्वारा छोड़ी गयी वह जीर्ण-शीर्ष पर्णकुटी बाद के साधुओं के द्वारा सम्मानपूर्वक सुरक्षित थी एवं 'प्रभु महाराज की कुटिया' के नाम से निर्दिष्ट होती थी।

१९३८ ई० के अप्रैल महीने में वीरेश्वरानन्द जी ने बेलुड़ मठ आकर मठ और मिशन के अन्यतम सह-सचिव का भार स्वीकार किया। उनके इस काल के जीवन का इतिहास जैसा वैचित्र्यमय है वैसा ही दृष्टान्त स्वरूप भी। त्याग-तपस्या और नियमित शास्त्रानुशीलन से दीप्त उनके जीवन में कैसी अपूर्व कर्मकुशलता और संगठन शक्ति का सम्यक् विकास हुआ था यह श्रीरामकृष्ण संघ में चिरस्मरणीय रहेगा। उनकी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय इस समय प्रचुररूप में देखा गया है—आश्रमों का संगठन, रक्षाकार्यों का संचालन, मठ और मिशन की बहुविध समस्याओं का सुन्दर समाधान आदि कार्यों में उनकी असाधारण निपुणता ने उन्हें अलक्ष्य रूप से भावी संघ-नेता के लिए उपयोगी बना दिया था। स्वामी माधवानन्दजी ने स्वास्थ्य के कारणों से १९४९ ई० के अप्रैल से १९५१ ई० के मार्च महीने तक सामयिक विश्राम ग्रहण किया था। इस अवधि में स्वामी वीरेश्वरानन्दजी ने ही उनके स्थान पर महासचिव का दायित्व वहन किया। स्वामी माधवानन्द के पुनः अपने स्थान पर लौट आने पर स्वामी वीरेश्वरानन्दजी ने भी अपने पूर्व दायित्व को प्रसन्नतापूर्वक वरण कर लिया। १९६१ के अप्रैल में स्वामी माधवानन्द चिकित्सार्थ विदेश गये। स्वामी वीरेश्वरानन्द ने ही तब उनके महासचिव का कार्यभार ग्रहण किया एवं १९६६ में संघाध्यक्ष होने के पूर्वतक वे महासचिव के रूप में ही मठ और मिशन की सेवा में निरत थे।

वीरेश्वरानन्द महाराज सह सचिव, महासचिव, या मठाधीश, जिस पद पर जब भी आसीन थे, वे रामकृष्ण संघ के सदैव सर्वजन-सम्मानित प्रभु महाराज के रूप में एक उज्ज्वल ज्योतिष्क स्वरूप थे। महासचिव का कार्यभार लेने के साथ-साथ अपने चिर अभ्यस्त तप को कुछ-कुछ शिथिल करने के लिए उन्हें निश्चय ही बाध्य होना पड़ा, तथापि उनकी जीवनचर्या की रीति-नीति अत्यन्त अनाडम्बरपूर्ण और साधारण थी। महासचिव के कक्ष में स्थायी रूप से रहने के पूर्वकाल तक उनका आवास गृह था गिरीश स्मृति भवन के तीन मंजिले मकान के एक सीढ़ी घर में—जिसका आयतन उनके हृषिकेश की उस कुटिया का ही स्मरण कराता था। मात्र कोई एक व्यक्ति किसी प्रकार सो पाये—यही था उस कमरे का आयतन। शय्या के नाम पर थी फर्श पर एक चटाई—सामान था पुस्तकों का

समूह। चाय-पान करने के प्याले के रूप में था तामचिनी का एक कटोरा, हाथ से झलने वाला एक पंखा था और था एक कमंडलु। किसी अन्य व्यक्ति से मिलने का प्रयोजन होने पर कमरे के बाहर आकर खुली छत पर एक चटाई बिछाकर बैठना होता। इस सीढ़ीघर में रहकर ही मठ और मिशन के सह सचिव अपना कर्मयोग, ध्यान-भजन एवं शास्त्रानुशीलन आदि लोक दृष्टि के अन्तराल में नीरव रूप से करते थे। उनके रचित शास्त्र ग्रंथों के अनुवादों के अधिकांश इसी सीढ़ीघर में बैठकर लिखे और सम्पादित किये गये। प्रसंगतः स्मर्तव्य—'Brahma-Sutras' (ब्रह्म-सूत्र), 'Srimad Bhagavad Gita with Gloss of Sridhar Swami' (श्रीधर स्वामी की टीका के साथ श्रीमद्भगवद्गीता) एवं स्वामी आदिदेवानन्द के सहयोग से ब्रह्मसूत्र के रामानुज भाष्य का अँग्रेजी अनुवाद उनके शास्त्रज्ञान और वेदज्ञ होने के परिचायक हैं। इस समय किसी सेवक या नौकर की सहायता अपने निजी कार्य के लिए वे ग्रहण नहीं करते थे।

वीरेश्वरानन्दजी के सह-सचिवत्व काल में संघ तथा सम्पूर्ण देश में कुछ अत्यन्त गुरुतर परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गयी थीं—ऐतिहासिक विवर्त्तन भी हुए थे। यथा—द्वितीय विश्वयुद्ध, देश-विभाजन, स्वाधीनता-प्राप्ति, साम्प्रदायिक दंगे, अकाल और महामारी आदि, फिर श्री श्रीमाँ सारदादेवी की जन्म-शताब्दी आदि। शुभ अशुभ सभी परिस्थितियों में ही रामकृष्ण संघ की ओर से स्वामी वीरेश्वरानन्द के ऊपर पड़े हुए सारे कर्मोद्योग असाधारण रूप से महिमान्वित होकर सबकी श्रद्धापूर्ण दृष्टि को आकर्षित करते थे। उदाहरण स्वरूप कहा जा सकता है कि साम्प्रदायिक दंगों एवं प्राणान्तक दुर्भिक्ष के उन दिनों में मिशन की ओर से उन्होंने जिस सेवा और रक्षाकार्य का परिचालन किया था, इससे उस विशाल कर्मकाण्ड के प्रत्येक स्तर पर उनकी असाधारण संगठन-कुशलता, मानव प्रीति, नेतृत्व प्रतिभा, साहस, संयम और धैर्य प्रस्फुटित हुए थे। उन दिनों उनका शारीरिक परिश्रम भी किसी भी युग के शक्तिशाली कार्यकर्त्ता के लिए एक विस्मयकारी उदाहरण था। श्री श्रीमाँ की जन्मशताब्दी में युगाचार्य स्वामी विवेकानन्द द्वारा अभीप्सित नारी मठ की स्थापना की जो प्रेरणा रामकृष्ण संघ में अनुभूत हुई थी और जिसे कार्य रूप में परिणत करने के लिए संघ के कार्यकर्त्तागण व्रती हुए थे,—उसका दायित्व अनेक बार स्वामी वीरेश्वरानन्द के ऊपर ही दिया गया था। उन्होंने अत्यन्त दक्षता के साथ उस पवित्र किन्तु कठिन दायित्व को फलप्रसू किया था। 'सारदा मठ' की स्थापना में उनकी भूमिका एक ऐतिहासिक अवदान स्वरूप है।

१९६६ ई० से जीवन के शेष उन्नीस वर्षों तक वे रामकृष्ण मिशन के अध्यक्ष—गुरु और कर्णधार रहे। इतनी ऊँची गरिमा से प्रतिष्ठित रहने पर भी वे थे साधु-गृही चाण्डाल तक साधारण जनों के दरदी सुहृद—सदैव मंगलाकांक्षी स्वजन। हजारों हजार मनुष्यों के अध्यात्म पथ के परम मार्गदर्शक—और फिर एक ही समय में अगणित उपेक्षित जनों के निकट बान्धव। आदिवासी और पर्वतीय अंचलों के अनुन्नत निवासियों की जीवन-यात्रा की उन्नति की चिन्ता उन्हें अस्थिर कर देती। उनका अध्यक्षत्व-काल केवल रामकृष्ण संघ ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व के लिए ही अनेक कारणों से गुरुत्वपूर्ण था। समस्त परिस्थितियों में ही उनका सुयोग्य नेतृत्व मठ और मिशन के इतिहास में चिर स्मरणीय रहेगा। रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन की कार्य-परिधि उनके ही प्रत्यक्ष अनुमोदन और निर्देशन से प्रचुर रूप में विस्तृत हुई है।

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के भाव से उद्बुद्ध देशव्यापी विभिन्न संस्थाओं एवं प्रतिष्ठानों को एक ही सूत्र में पिरोकर मठ और मिशन का अनुवर्ती बनने एवं इसी भाव-सम्मिलन के द्वारा समग्र समाज में सत्य, संहति और सेवा के मनोभाव के विस्तार के लिए वीरेश्वरानन्दजी के आग्रह का अन्त नहीं था। दिसम्बर १९८० ई० में बेलुड़ मठ में अनुष्ठित ऐतिहासिक रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के द्वितीय

महाधिवेशन—जिसे विश्व-सम्मेलन भी कहा जा सकता है—की मूल प्रेरणा और शक्ति थे स्वयं स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज। इस अधिवेशन के आदर्श और उद्देश्य के सम्बन्ध में उन्होंने समागत पन्द्रह हजार से अधिक प्रतिनिधियों को सम्बोधित करते हुए कहा था—"रामकृष्ण संघ केवल साधु-ब्रह्मचारियों को लेकर नहीं है, केवल मात्र दीक्षित भक्तों के लिए भी नहीं है बल्कि, जो कोई भी श्रीरामकृष्ण, श्री श्रीमाँ एवं स्वामीजी के भावादर्श के विश्वासी और अनुराग सम्पन्न हैं, उन सब को लेकर ही यह संघ है। और यह विराट् समष्टि ही प्रकृत संघ-शरीर है।" श्रीरामकृष्ण संघ के महाध्यक्ष के कण्ठ से यह उदार उदात्त आह्वान जिस दिन उच्चारित हुआ था, उस दिन से ही रामकृष्ण-भावान्दोलन की गति में नूतन वेग का संचार हुआ था, यह कहने की आवश्यकता नहीं। सारे देश में 'रामकृष्ण—विवेकानन्द—भाव प्रचार समिति' का उद्भव—इस आह्वान का ही परिणाम है।

गत १९७८ ई० की विध्वंसक बाढ़ के बाद श्रीहत ग्रामांचलों की दुर्दशा ने उन्हें अत्यंत विचलित कर दिया था। ग्रामवासियों की आर्थिक आत्मनिर्भरता ही मात्र नहीं—उन लोगों के धर्म, शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवेश एवं सांस्कृतिक पुनर्स्थापन की चिन्ता ने उनकी नींद हर ली थी। आजकल जिस 'पल्ली मंगल' के कार्यक्रम सबको आकृष्ट कर रहे हैं, वे पूर्णरूपेण स्वामी वीरेश्वरानन्दजी के संकल्प से ही उद्भूत हैं। आन्ध्र प्रदेश की 'ग्राम श्री' की परिकल्पना भी उनके ही चिंतन का फल है। दरिद्र, अज्ञ, निपीड़ित मानवात्मा के प्रति उनकी अपरिसीम श्रद्धा और ममता सदैव जनसेवकों के लिए प्रेरणा का स्रोत बनी रहेगी।

सारा विश्व श्रीरामकृष्ण के भाव से, स्वामीजी के आदर्श से जागृत होगा—यही था श्रीवीरेश्वरानन्दजी के सारे जीवन का ध्यान-ज्ञान। भारत के, केवल भारत के ही क्यों, सम्पूर्ण पृथ्वी के चिन्तनशील व्यक्ति इस उद्देश्य में सम्मिलित होने का प्रयास करें—नवयुग के भावादर्श के साथ वे सब स्वयं परिचित होने एवं विश्ववासियों को परिचित होने में सहायता करें—इस बात के लिए वे (स्वामी वीरेश्वरानन्दजी) अत्यन्त आग्रहशील थे। वस्तुतः, संघाध्यक्ष वीरेश्वरानन्दजी की इस ऐकान्तिक इच्छा को रूप-आकार प्रदान करने के उद्देश्य से ही 'रामकृष्ण–विवेकानन्द-भावान्दोलन समीक्षा-पर्षद्' नामक एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था स्थापित हुई है। देश की शिक्षा व्यवस्था तथा तरुण-तरुणियों के लिए भी उनके उद्वेग की सीमा नहीं थी—जिसने उनके जीवन के अंतिम कई वर्षों को गंभीर रूप से व्याप्त कर लिया था। १२ जनवरी, १९८५ स्वामी विवेकानन्द की जन्म-तिथि (अंग्रेजी कैलेंडर के अनुसार) से भारतवर्ष में 'युवा-वर्ष' आयोजित हुआ है—राष्ट्र संघ ने वर्तमान वर्ष को ही 'अन्तराष्ट्रीय युवा वर्ष' घोषित किया है। इससे तिरानवे वर्ष के वृद्ध संन्यासी के अस्वस्थ शरीर में भी जिस तारुण्य की प्रभा परिलक्षित हुई थी, संभवतः वैसी किसी तरुण या तरुणी में भी नहीं देखी जा सकती है। उनके ही निर्देश से भारतवर्ष के प्रत्येक नगर-ग्राम में, प्रत्येक युवा-सम्मेलन में, स्वामी विवेकानन्दजी की उद्दीपनकारी वाणियों का संकलन बिना मूल्य प्रदान किया गया था—लाख-लाख युवक-युवतियों के हाथों में। उक्त १२ जनवरी को बेलुड़ मठ के प्राङ्गण में विपुल छात्र-छात्राओं के सम्मेलन में वे स्वयं उपस्थित हुए थे—क्षीण, किन्तु दृढ़ कण्ठ से उन्होंने उन सबको सम्बोधित करते हुए कहा था—'मैं आशा करता हूँ कि तुमलोग स्वामीजी को निराश नहीं करोगे।.........तुम सब आज संकल्प ग्रहण करो कि स्वामीजी (विवेकानन्दजी) के कार्यों में तुमलोग लग जाओगे, और स्वामीजी जिस मार्ग पर भारतबर्ष को ले जाने को कह गये थे, उसी पथ पर देश को आगे ले जाओगे.. ...स्वामीजी के आशीर्वाद तुम लोगों के ऊपर बरसें—उनसे मेरी यही प्रार्थना है।'—यही थी स्वामी वीरेश्वरानन्दजी की अंतिम प्रार्थना—खुली सभा में अंतिम वाणी। बेलुड़ मठ के संन्यासियों को लक्ष्य कर, उन्हें यह कहते सुना जाता था—'स्वामीजी की अग्नि को चारों ओर फैला दो।'

श्री श्रीमाँ की सन्तान वीरेश्वरानन्दजी में एक शोकहरण, क्षमाप्रवण मातृसत्ता अंतर्निहित थी—जिसने उनके ज्ञान और कर्मोज्वल चरित्र-तेज को कभी भी प्रखर नहीं कर स्निग्ध और मधुर बना दिया था। उस क्षीणकाय कृश-शरीर का स्नेहाकर्षण, उनके सस्मित मुख से निकली दो-एक बात भी समीपागत लोगों—स्त्री-पुरुष या बाल-वृद्ध—साधु या गृही—सब को मनोवांछित शान्ति और सांत्वना से पूर्ण कर देती। भगवत्-अन्वेषी व्यक्तियों को जिस प्रकार उन्होंने गुरुमूर्ति बनकर साधन-पथ का निर्देश दिया था,—संसार-ज्वाला से जर्जर या शोक के ताप से विह्वल आर्त व्यक्तियों को भी ठीक उसी प्रकार एक माँ की स्नेह-दृष्टि लेकर मन का कष्ट कम करने का सटीक उपाय बता दिया था। लोक-गुरु की सारी विशेषताएँ ही उनके चरित्र में पूर्णत: प्रकाशित हो गयी थीं। सोचने पर आश्चर्य होता है, एक बार श्रीमाँ की प्रशंसा में उन्होंने स्वयं माँ की महिमा के प्रकाशन के उद्देश्य से जो लिखा था, परवर्ती जीवन में वही मानो उनके स्व-चरित्र में भी स्वत: प्रस्फुटित हो उठा था। एक शब्द में, उनका अपना जीवन ही श्री श्रीमाँ के आशीर्वाद की सार्थक प्रतिमूर्ति के रूप में व्यक्त हो गया था—मानो मातृ-प्रशस्ति की ही वे सार्थक एक प्रतिमा हों। उन्होंने श्री श्रीमाँ के प्रसंग में लिखा था : 'जिनका प्रेम साधु और पतित का भेद करना नहीं जानता था और जिनकी अपरिमेय प्रशान्त पवित्रता का प्रभाव दुरतिक्रम्य था ऐसी एक नारी के निकट बैठ पाने पर कैसा आनन्द और कैसी शान्ति मिलती थी।' ठीक इसी मातृसत्ता से ही उन्होंने अपने जीवन को परिपूर्ण कर रखा था—अथवा मानो स्वयं जगज्जननी ही अपनी संतान के हृदय में सदैव अभिनिविष्ट रहती थीं। यह सबके लिए प्रत्यक्ष—निकटवर्ती सभी के हृदय में अनुभूत तथ्य है। अजस्र घटनाओं की माला इसके उदाहरणस्वरूप पिरोयी जा सकती है।

बहु भाषा, विचित्र संस्कृति, विभिन्न भोजन, वेशभूषा एवं नाना मतों और आचार-व्यवहारों का देश है—यह भारतवर्ष। इसी से भारत के एक आदर्श लोक-गुरु को होना होगा अत्यन्त सहज समन्वयवादी—जो सभी भाषाओं, खाद्य, वेशभूषा और संस्कृति के प्रति समान श्रद्धासम्पन्न हों। वीरेश्वरानन्दजी के चरित्र और व्यवहार में इसी असाधारण गुण का स्वाभाविक प्रकाश था। उनकी अपनी मातृभाषा कोंकणी थी, किन्तु बंगला भी उनकी मातृभाषा नहीं है, यह सहज रूप से मान लेना किसी के लिए भी कठिन होता। उनकी प्रतिक्षण की बातचीत की बंगला में किसी प्राचीन बंगभाषी की सरल उच्चारण-रीति ही प्रकट होती थी। इसके अतिरिक्त संस्कृत, हिन्दी, तमिल, कन्नड़ एवं अंग्रेजी भाषा में उनकी सहज व्युत्पत्ति और अधिकार सुविदित है। भोजनादि कार्यों में भी उनकी रुचि और आदतें थीं अति साधारण—जिनसे किसी विशेष आंचलिकता का आभास बिल्कुल नहीं पाया जाता था। लम्बे अरसे तक उनके साथ उठने-बैठने वाले अनेक व्यक्ति भी नहीं जान पाते थे कि उनका शरीर किस प्रदेश का है। जानने पर भी अनेक लोग इस विषय में सुनिश्चित नहीं थे। विच्छिन्नता-प्रवण वर्तमान समाज में यह भी एक अनन्यसाधारण आदर्श है। भग्न-शरीर से भी उन्होंने सारे भारत का परिभ्रमण किया था। बाहर भी वे गये थे—जिज्ञासु लोगों के आह्वान पर, आर्तजनों की पुकार पर। वार्धक्य, बुढ़ापा, व्याधि और दृष्टिहीनता ने प्रकृति के नियमानुसार उनके स्थूल शरीर का स्पर्श किया था—किन्तु, उनका मानसिक स्वास्थ्य था चिर तरुण, सदा हास्यमय, नित्य सतेज। ऐसा, कि महासमाधि के दिन तक उनकी अलौकिक अंत:प्रकृति में किसी प्रकार का व्यतिक्रम नहीं उपस्थित हुआ। चिर अभ्यस्त रंग-परिहास और रसज्ञता उनका एक चारित्रिक सौन्दर्य थी। मृत्यु के समक्ष सोये रहकर भी मृत्यु को लेकर रसिकता—अत्यन्त बड़े ज्ञानी के लिए ही संभव है। स्वामी वीरेश्वरानन्द महाराज का जीवन इसी से योग, ज्ञान और अनासक्ति का विस्मयकारी दृष्टान्त है।

१९८३ ई० से ही उनके स्वास्थ्य में तेजी से गिरावट

होने लगी। दु:साध्य कैंसर रोग से उनका शरीर क्रमश: जीर्ण हो गया। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की अनुकूलता से इस दुर्धर्ष रोग का उपशम हुआ था, किन्तु उनकी आयु को यह रोग उत्तरोत्तर परिसमाप्ति की ओर ले जा रहा था। अन्त में गत १३ मार्च, बुधवार के अपराह्न में ३ बजकर १३ मिनट पर श्रीरामकृष्ण-मठाधीश स्वामी वीरेश्वरानन्दजी ने सदा के लिए अपनी माँ की गोद में चिर-इच्छित विश्राम लिया। बेलुड़मठ में उनका निवास-कक्ष तब अगणित लोगों की अश्रु-धारा से सिक्त और सिंचित हो गया तथा समवेत साधु-ब्रह्मचारियों के कण्ठ से उद्‌गीत वेदमंत्र की ध्वनि से समग्र मठभूमि अनुरंजित-स्पन्दित हो उठी। इस प्रकार रामकृष्ण-संघ के इतिहास के विपुल घटना-समन्वित एक और अध्याय के अन्तिम पृष्ठ पर इति रेखा अंकित हो गयी। जिनका समग्र जीवन ही था उपासना स्वरूप—प्रशस्तिमय, उससे उनकी यात्रा के विरति-काल में भी एक क्षण के लिए भी लयभंग नहीं हुआ, सुर नहीं टूटा। श्रीरामकृष्ण, माँ, स्वामीजी एवं ब्रह्मानन्द महाराज के उद्देश्य से प्रणति-निवेदनपूर्वक ही उस अपूर्व निवेदित जीवन की शिखा निर्वापित हो गयी। भविष्य के लिए रह गया है उसकी समुज्वल आलोक-स्मृति, जो आगामी दिनों के सभी स्तरों के मनुष्यों को प्रेरणा प्रदान करेगी।

रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-जगत् में भी युग है—युग का प्रवाह चलता है। जैसे व्यक्ति का एक वैशिष्ट्य होता है, उसी प्रकार प्रत्येक युग की भी नहीं नकारने योग्य विशिष्टता होती है। और वह युग-वैशिष्ट्य उस युग के किसी विशेष जीवन को केन्द्र बनाकर ही व्यक्त होता है। उस निर्दिष्ट जीवन की चरित-कथा को लेकर ही युग की जीवनी रची जाती है। श्रीमत् स्वामी वीरेश्वरानन्दजी का जीवन-चरित भी वस्तुत: इस भाव-जगत् के ही एक युगोपयोगी स्वरूप की व्याख्या है—रामकृष्ण-विवेकानन्द-भावलोक का आधुनिकतम जीवन-चित्र है। लोकान्तरित इस महाजीवन के प्रति निवेदित करते हैं—हमसब अपने सभक्ति प्रणाम।

[पृष्ठ १२ का शेषांश]

मृत्यु के कुछ ही समय पूर्व गंगाजल माँगकर उन्होंने अपनी देह पर छिड़का, श्री श्रीठाकुर के चरणामृत का पान किया एवं तीन-चार बार श्रीरामकृष्ण, माँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द तथा स्वामी ब्रह्मानन्दजी के उद्देश्य से प्रणाम निवेदित किये। मृत्यु के दश मिनट पूर्व जब उन्हें पूछा गया कि क्या वे करवट बदलना पसंद करेंगे तो उन्होंने स्पष्ट उत्तर दिया—"हाँ, करवट बदल दो।" सचमुच उनकी मृत्यु थी मानो "एक कमरे से दूसरे कमरे में जाना।

पूजनीय महाराज में इस प्रकार श्रीरामकृष्णदेव के भावों का विशेष प्राकट्य हुआ था। उनके प्रति हमारी श्रद्धांजलि अर्पित करने का कार्य तभी पूर्ण होगा जब हमसब श्रीरामकृष्ण भावानुरागी श्रीरामकृष्णदेव के इन भावों को—ज्ञान, भक्ति, कर्म तथा योग के समन्वय के भाव को तथा त्याग, वैराग्य, प्रेम, करुणा, आदि भावों को—अपने जीवन में प्रकट कर सकेंगे। मैं भगवान् श्रीरामकृष्णदेव, श्रीमाँ सारदादेवी तथा स्वामी विवेकानन्दजी, एवं विशेष करके पू० वीरेश्वरानन्दजी महाराज से आशीर्वाद की प्रार्थना करता हूँ ताकि हम सभी श्रीरामकृष्णदेव के भावों को अपने जीवन में प्रकट कर सकें।

संस्मरण

प्रेममय पुरुषोत्तम

—स्वामी सत्यरूपानन्द
बेलुड़ मठ।

पूज्य स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज के स्नेह-स्निग्ध निकट संपर्क में वर्षों तक रहने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है। स्वभावत: कितनी ही अविस्मरणीय स्मृतियाँ उनके साथ जुड़ी हुई हैं मेरी। उनमें से एक का उल्लेख करना ही पर्याप्त होगा।

संघ-गुरु होने के नाते पूज्य वीरेश्वरानन्दजी महाराज मठ के साधुओं और कर्मचारियों की निजी आवश्यकताओं पर सदैव सतर्क-दृष्टि रखते और बड़ी तत्परता से उनके अभावों को दूर करने की चेष्टा किया करते थे। ऐसा वे संघ-गुरु के दायित्व-निर्वाह की शुष्क औपचारिकता का निर्वाह करने के लिए नहीं करते थे बल्कि यह उनका सहज स्वभाव था। यह वृत्ति उनकी नैसर्गिक प्रवृत्ति हो गयी थी। प्रेम, करुणा और सेवा के वे जीवित तीर्थराज थे।

अभी कुछ ही वर्षों पूर्व की घटना है। बहुत दिनों से मेरे मन में जाड़े के लिए एक ऊन का कुर्ता बनवाने की इच्छा हो रही थी। अचानक मठ के एक साधु ने एक दिन मेरे पास आकर बातचीत के क्रम में पूछा—'इस जाड़े में आप कुछ बनवाना चाहेंगे?' मैंने कहा—'हाँ, इच्छा होती है सफेद मुलायम और बढ़िया किस्म की ऊन का एक कुरता बनवाऊँ।' बातचीत के बाद साधु महाराज चले गये।

दो दिनों के बाद प्रेसिडेंट महाराज के सेवक ने आकर मुझसे कहा—'प्रेसिडेंट महाराज आपको बुला रहे हैं।' मठ की जमीन-जायदाद और मकानों की देख-रेख तथा उनसे सम्बद्ध समस्याओं के सम्बन्ध में कई प्रकार के कार्य मुझे करने पड़ते हैं। सो मैंने सोचा, इन्हीं सब विषयों के संदर्भ में सम्भवत: प्रेसिडेंट महाराज कुछ पूछ-ताछ करेंगे। उनके निकट जाकर मैंने उन्हें सादर प्रणाम किया। उन्होंने तुरंत अपने ट्रंक से भक्तों के द्वारा उनके निजी उपयोग के लिए भेजे गये दो सफेद और मुलायम कश्मीरी शाल निकाल कर मेरी ओर बढ़ाते हुए पूछा—'देखो तो, यह कैसा कपड़ा है? क्या इनसे तुम्हारा काम चल जायगा?' मेरे दीर्घ शरीर की ओर ध्यान रखकर आगे उन्होंने कहा—'दो शालों से तुम्हारा एक कुर्ता तो बन जायगा न?' मैं तो भौंचक! अवाक्! सोचा भी नहीं था कि जिन साधु ने मुझसे जाड़े की जरूरत के संबंध में पूछा था वे प्रेसिडेंट महाराज की ओर से ही पूछने आये थे। मैंने विनम्र भाव से कहा—'जी हाँ, जी हाँ, बन क्यों नहीं जायगा? काफी है। कपड़ा भी बहुत बढ़िया है।'—'तो फिर इसे ले जाओ और अच्छे दर्जी को देकर ठीक से बढ़िया कुर्ता बनवाना।'—उन्होंने कहा।

तीन-चार दिनों के बाद फिर प्रेसिडेंट महाराज की ओर से बुलाहट। पहुँचा, तो उन्होंने कहा—'अरे जमींदार, (मठ की जमीन-जायदाद की देख-रेख करने के कारण वे स्नेहवश मुझे 'जमींदार' कहकर सम्बोधित करते थे) तुम कैसे आदमी हो! कुर्ता सिलवाया और मुझे देखने तक नहीं दिया!' जब मैंने कुर्ता पहनकर उन्हें दिखाया तब बड़े प्रसन्न-भाव से कुर्ते पर हाथ फेरने लगे। उनकी आँखों में आह्लाद और प्रसन्नता की चमक थी। इधर-उधर से कुर्ते को छूते हुए वे बोले—'अहा, कितना अच्छा लगता है तुम्हारे शरीर पर!' मैं उनके स्नेह से अभिभूत हो गल-पिघल रहा था। स्वयं उनके शरीर पर साधारण मोटा वस्त्र और मेरे समान

एक साधु पर इतनी चिन्ता, सदयता और स्नेहशीलता! उनकी यही प्रेमवत्सलता हम सब को उनका कायल बना देती थी, उनके प्रति असीम आदर और श्रद्धा का उद्रेक कर देती थी।

जगत् में दूसरों के दुःख से दुःखी होते हुए बहुत लोगों को देखा जाता है, किन्तु दूसरों के दुःख को अपना दुःख समझकर उसे दूर करने के लिए तत्पर रहना और दूसरों के सुख से सुखी होना, आनन्द-विभोर होना—यही तो महापुरुषों के लक्षण हैं। मैं आज भी सोचता हूँ, जिनके ऊपर इतने सारे दायित्व थे, इतनी सारी समस्याएँ थीं, वे मठ के एक-एक साधु और कर्मचारी के निजी सुख-दुःख पर इतना ध्यान कैसे रख पाते थे? चित्त की विशदता और उदारता के बिना क्या यह संभव है? भूमैव सुखम्, ना अल्पम सुखमस्ति। निश्चय ही वे भूमा में प्रतिष्ठित हो चुके थे। निश्चय ही वे एक महापुरुष थे—एक परम प्रेममय पुरुषोत्तम थे।

□

पू० वीरेश्वरानन्दजी महाराज के संस्मरण

—स्वामी वरानन्द

बेलुड़ मठ।

श्री भगवान् की असीम कृपा से मुझे पूजनीय महाराज की सेवा करने का सौभाग्य मिला था—१९७३ से १९७५ तक लगभग दो वर्षों के लिए और बाद में १९८३ से १९८५ तक लगभग डेढ़ वर्षों के लिए। मुझे इस दौरान उन्हें निकट से देखने के अवसर मिले। उनके संबंध में अपने व्यक्तिगत संस्मरणों को प्रकट करना मैं उचित नहीं समझता हूँ। केवल कुछ सामान्य बातों का ही उल्लेख मैं करूँगा।

श्री रामकृष्णदेव, माँ सारदा तथा स्वामी विवेकानन्द के प्रति उनमें अगाध श्रद्धा तथा भक्ति थी। चाहे वर्षा हो या शीत, प्रतिदिन वे मन्दिरों में दर्शन करने जाया करते थे। एकादशी या अन्य विशेष अवसर पर तो दिन में दो बार जाते थे। वृद्धावस्था में अत्यन्त दुर्बल हो जाने पर भी उनका यह क्रम नहीं टूटा था। बेलुड़ मठ से अन्य किसी आश्रम में जाने पर भी यह क्रम जारी रहता था। उनका दर्शन करने का तरीका भी था अपूर्व। किसी भी मन्दिर में जाने के बाद प्रतिमा के समक्ष कई मिनटों तक वे चुपचाप खड़े रहते, अच्छी तरह से निहारते—करबद्ध हाथों से। ऐसा लगता, मानो वे साक्षात् भगवान का दर्शन कर रहे हैं, उनसे बातचीत कर रहे हैं। १९८३ में जब वे गले के कैन्सर से आक्रान्त थे। और कैन्सर अस्पताल में उनकी कोबाल्ट रे द्वारा चिकित्सा की जा रही थी, तब भी प्रत्येक सप्ताह के अन्त में वे दो दिनों के लिए बेलुड़ मठ आते थे और अत्यन्त दुर्बल होने के बावजूद सभी मन्दिरों में जाकर उसी निष्ठा से दर्शन करते थे। मार्च १९८५ में अपनी महासमाधि के कुछ दिनों पूर्व जब वे इतने दुर्बल थे कि करवट बदलना भी उनके लिए मुश्किल था, उस समय भी बीच-बीच में बोलते थे—"मैं मन्दिर जाऊँगा दर्शन करने—गाड़ी बुला लो।" २१ फरवरी १९८५ को श्रीरामकृष्णदेव की जन्म-तिथि के दिन वे इतने दुर्बल थे कि खड़े भी नहीं रह पा रहे थे, फिर भी वे सभी मन्दिरों में दर्शन करने गये। काफी कष्टपूर्वक उन्हें गाड़ी में बैठाया गया तथा गाड़ी से उतारा गया।

पिछले वर्ष की बात है। एक दिन सुबह में यह देख कर चौंक गया कि पू० महाराज तीव्र गति से माँ सारदा के मन्दिर की ओर अकेले ही जा रहे हैं। अन्य समय उनके साथ सेवकगण रहते। कुछ वर्षों से वे प्राय: गाड़ी से ही जाते थे। किन्तु आज यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वे अचानक निकल पड़े हैं—अकेले ही; मानो माँ के दर्शन के लिए आकुल। मैं उस समय पू० महाराज के कमरे के पासवाले बरामदे में ऑफिस का कुछ काम कर रहा था। मैं भी उनके पीछे-पीछे जाने लगा ताकि कहीं कुछ हो न जाय। वहाँ देखा मंदिर में स्त्रियों की बड़ी भीड़ है—वे सब आपस में जोर-जोर से बातचीत कर रही हैं। फिर भी पू० महाराज माँ के दर्शन करते-करते तन्मय हो गये तथा अनेक क्षणों तक वहाँ माँ के सामने खड़े रहे। बाहर के शोर-गुल का उनपर कोई असर नहीं था।

एक बार रात को लगभग डेढ़ बजे मेरी नींद खुल गयी। नीचे आकर पूज्य महाराज के घर में गया—यह देखने के लिए कि उन्हें कोई आवश्यकता तो नहीं है! वहाँ दरवाजे से झाँककर देखा, पू० महाराज टार्च लेकर श्रीमाँ की तस्वीर को देखने का प्रयत्न कर रहे हैं। (तब उनकी नेत्र-ज्योति बहुत ही क्षीण थी)। जब किसी भी प्रकार देखने में सफल नहीं हुए, तब उन्होंने एक और टार्च उठाकर अपने पैरो के बीच दबाया तथा दोनों टार्च द्वारा फोटो देखने का प्रयत्न करने लगे। अनेक क्षण तक वे फोटो की ओर ताकते रहे। रात को इस प्रकार करते हुए उन्हें कई बार देखा गया है।

एक बात और मैंने लक्ष्य की थी—सारे दिन वे भगवान में तन्मय होकर रहते थे।। भक्तों को दर्शन देते समय या अन्य समय सदैव जप करते रहते थे। काम-काज करते-करते भी बीच-बीच में अन्तर्मुखी हो जाते तथा भगवद्भाव में खो जाते थे। पिछले कुछ वर्षों से यह प्रक्रिया और भी बढ़ गयी थी।

एक दिन शाम को मैं उन्हें प्रणाम करने गया। पीछे की ओर बहुत शोर-गुल हो रहा था—शायद उनके अन्य सेवकों के बीच में कुछ गर्म चर्चा छिड़ी थी। लगभग ५ मिनट पहले ही एक भक्त-परिवार पूज्य महाराज के दर्शनादि कर लौट गया था। जाकर देखा कुर्सी पर बैठे ही पूज्य महाराज तन्मय होकर जप कर रहे हैं। बाहर के शोर-गुल का उनपर कोई प्रभाव नहीं है। अभी कुछ क्षण पहले ही भक्तों से हँसकर बातचीत कर रहे थे किन्तु, अभी किसी और जगत् में चले गये हैं। मैं वहीं खड़ा रहा। हाथ से उनके चरण कमलों का स्पर्श कर प्रणाम करने का साहस नहीं हुआ, कहीं उनका ध्यान भंग हो जाएगा, यह सोचकर। लगभग १० मिनट तक अपेक्षा करने पर भी जब उनका ध्यान नहीं टूटा तब सोचा, आज दूर से ही प्रणाम कर चला जाऊँगा। लौटते समय पैरों की आवाज सुनकर पू० महाराज ने पूछा—"कौन?" मैंने कहा "महाराज, मैं गोविंद, प्रणाम करने आया था"? पूज्य महाराज ने कहा—"ठीक है, कर लो।" जब प्रणाम कर बाहर जाने लगा तब देखा कि वे फिर भगवद्भाव में तल्लीन हो गये हैं।

"कार्य को पूजा में कैसे परिणत किया जाए!" यह पूछने पर उन्होंने कहा था—"सदा स्मरण-मनन रखो, जितना हो सके इष्ट-मंत्र का जप करो तथा जो भी कार्य कर रहे हो—प्रारम्भ में तथा अन्त में भगवान को समर्पित कर दो।"

पू० महाराज जब अपने संन्यास जीवन के प्रारम्भ में अद्वैत आश्रम में थे तब उन्हें दिन में लगभग १००० पत्रिकाओं पर पते लिखने पड़ते थे—और शाम को पैदल पोस्ट-ऑफिस जाकर उन पत्रिकाओं को डिस्पैच (despatch) करना पड़ता था। यह पूछने पर—"क्या आपको इसमें नीरसता महसूस नहीं होती थी?" उन्होंने कहा—"क्यों? हमारे देश में अधिकतर शहरों का नाम तो भगवान के नाम पर ही है—एक-एक पता लिखता था और सोचता था एक-एक जप किया। भगवान् का जप करने में नीरसता कैसी?"

श्रीमाँ के एक वृद्ध गैर-संन्यासी शिष्य ने उनसे

आशीर्वाद की कामना की तब उन्होंने कहलाकर भेजा, "यह क्या, मेरा आशीर्वाद क्यों ? उसे तो साक्षात् माँ का आशीर्वाद प्राप्त हुआ है। श्रीमाँ पर भरोसा रखकर जीवन बिताना ही तो हमने सीखा है—यही तो हमलोग कर रहे हैं !"

एक दिन सुप्रीम कोर्ट के एक अवकाश-प्राप्त मुख्य न्यायाधीश उन्हें पूछ बैठे—"अच्छा बताइए तो, आपको कोई उपलब्धि हुई है।" पूज्य महाराज गंभीर होकर चुपचाप बैठे रहे, रक्ताभ चेहरे से उन्होंने धीर-गंभीर स्वर में उत्तर दिया—"देखिए, ठाकुर (श्रीरामकृष्ण) ही सत्य हैं—इस दृढ़ विश्वास से जीवन के नब्बे वर्ष बिता दिये हैं।"

१९७१ में जब पूज्य महाराज कटिहार गये थे, तब आश्रम के अन्तेवासियों ने एक दिन रात को भोजन के बाद उनसे आग्रह किया, श्रीमाँ के सम्बन्ध में अपने संस्मरण सुनाने के लिए। पूज्य महाराज ने यह कहकर टालना चाहा कि "यह सब पुस्तकों में छप गया है, पढ़ लो।" (साधारणतः वे यही उत्तर सब जगह देते थे) किन्तु आश्रमवासी छोड़नेवाले नहीं थे। बहुत आना-कानी के बाद पू० महाराज ने कहा—"जब श्रीमाँ से मुझे दीक्षा प्राप्त हुई तब ऐसा लगा कि श्रीमाँ ने मेरे मन को मानो मिट्टी के ढेले के समान रौंदकर, पुराने संस्कारों को मसलकर उन्हें एक नवीन दिशा प्रदान कर दी है।"

१३ मार्च, १९८५। दोपहर लगभग १२ बजे का समय। पूज्य महाराज उस दिन सुबह पिछली रात की अपेक्षा काफी अच्छे थे। किन्तु अब अचानक कष्ट बढ़ने लगा। मैंने कमरे में जाकर देखा, सब सेवकगण भोजन के लिए गये हैं, केवल एक ब्रह्मचारी उनके सिरहाने खड़ा हाथ से पंखा झल रहा है। बाहर बरामदे में डॉक्टर लोग, आवश्यकता पड़ने पर बुलावे की अपेक्षा से बैठे हैं। उस दिन न जाने क्यों, खाने की इच्छा नहीं हुई। पू० महाराज के चरणों के पास बैठकर चरणों पर हाथ फेरने लगा। पूज्य महाराज के श्रीमुख का दर्शन करते-करते देखा कि पूज्य महाराजजी बड़ी तीव्रता से जप कर रहे हैं। जैसे-जैसे पीड़ा बढ़ रही है—मानो जप भी उतना ही तीव्र होता जा रहा है। कुछ दिनों से, जब से वे अस्वस्थ होकर शय्या में पड़ गये थे, तभी से लक्ष्य कर रहा था, वे धैर्यपूर्वक सब कष्टों को सह कर सब समय जप कर रहे हैं ? किन्तु, आज तो मानो उसकी तीव्रता और भी अधिक बढ़ गयी है। लगभग ढाई बजे उन्होंने श्रीरामकृष्णदेव, श्रीमाँ, स्वामीजी तथा राजा-महाराजा के फोटो की ओर हाथ जोड़कर प्रणाम किये, उनके नामों का उच्चारण धीरे से किया, सभी भक्तों तथा साधु-ब्रह्मचारियों के उद्देश्य से आशीर्वाद के रूप में हाथ उठाया और श्रीठाकुर का चरणामृत पान किया। फिर सेवक से कहा हाथ में गंगाजल देने को। वे इतने दुर्बल हो गये थे कि गंगाजल ठीक से छिड़क नहीं पा रहे थे। फिर एक हाथ में 'ड्रीप' भी दिया जा रहा था। इसके बावजूद कष्ट-पूर्वक पूरी देह पर गंगाजल अपने हाथों छिड़का, कुछ मुख में भी डाला। लगभग ३ बजकर १७ मिनट पर पूर्णज्ञान के रहते हुए श्रीरामकृष्ण का जप करते-करते सदा के लिए वे भगवान् में लीन हो गये।

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः।।　　　गीता ४/१९

"जिसकी समस्त चेष्टाएँ कामना और संकल्प से अर्थात फल की कामना और कर्तृत्व के अभिमान से रहित हैं तथा ज्ञानरूपी अग्नि के द्वारा जिसके कर्म भस्म हो चुके हैं, ज्ञानी लोग उसे पंडित कहते हैं।"

स्वामी वीरेश्वरानन्द : श्रीरामकृष्ण-केन्द्रित एक जीवन

—स्वामी प्रमेयानन्द
बेलुड़ मठ।

श्रीरामकृष्ण संघाधीश स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज का सारा जीवन ही श्रीरामकृष्ण में केन्द्रित था। उनके पुण्य जीवन के सम्पर्क में आने का अवसर जिन व्यक्तियों को हुआ था उन्हें यह पता था कि श्री श्रीठाकुर, श्री श्रीमाँ और ठाकुर की सन्तानों के प्रति उनका प्रेम और श्रद्धा-भक्ति कितनी गहरी थी। इसलिए अत्यन्त बुढ़ापे में भी, जराजीर्ण रोगग्रस्त शरीर लेकर भी, उन्हें बेलुड़ मठ में ठाकुर, माँ, स्वामीजी और राजा महाराजजी के मंदिर में नित्य प्रणाम करते हुए देखा जाता था। बिना किसी विशेष शारीरिक कारण के या मठ पर अनुपस्थित रहने के कारण के अलावा कभी इस नियम का लल्लंघन नहीं होता था। उनलोगों के उद्देश्य में हाथ जोड़कर प्रणाम कर उन्होंने इस पृथ्वी से अन्तिम विदाई ली थी। वे कहा करते थे, 'हमलोगों के लिए ठाकुर ही सब हैं। गुरु, इष्ट सब वही हैं। वे हमलोगों के "गतिभर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत हैं"। स्वयं केवल कहकर या विश्वास कर ही नहीं, श्रीरामकृष्ण संघ के सभी साधु भक्तों के मन में भी जिससे ये भाव दृढ़तापूर्वक अंकित रहें इसके लिए, वे अपनी जन्मतिथि किसी को नहीं कहते थे। वे ठाकुर, माँ और स्वामीजी की आविर्भाव-तिथि का पालन करने एवं उनलोगों पर अपना ध्यान निवद्ध रखने को कहा करते थे।

बेलुड़ मठ से कहीं बाहर जाने के पूर्व और बाहर से लौटने के बाद ठाकुर, माँ, स्वामीजी और राजा महाराजजी के मंदिर में उपस्थित होकर उनलोगों को प्रणाम करना उनका प्राथमिक और अतिआवश्यक कार्य था। अगर वे बाहरसे आये किन्तु, उन्होंने देखा कि मंदिर का द्वार बन्द है और उसके खुलने का समय हुआ नहीं है, तो जबतक मंदिर का द्वार नहीं खुलता और वे उन सबको प्रणाम नहीं कर लेते तबतक वे स्वयं एक मानसिक अशान्ति एवं अस्थिरता का अनुभव करते थे। उपस्थित अन्य व्यक्तियों पर यह उद्विग्नता स्पष्ट रूप से व्यक्त हो उठती थी। ऐसा लगता था कि घर आकर भी घर के मालिक के अबतक दर्शन नहीं किये। वे उन सबको प्रणाम कर ही शान्त होते थे।

गले में कैंसर हो गया। चिकित्सा के लिए अस्पताल में भर्ती हुए। तब भी वे प्रति शुक्रवार की शाम को मठ पर उपस्थित होकर रविवार की शाम को पुनः अस्पताल लौट जाते थे। इस आने-जाने एवं दो दिन मठ में रहने के समय उनका रोगमय जीर्ण शरीर लेकर बेलुड़ मठ के प्रत्येक मंदिर में प्रणाम करने जाने का दृश्य अवर्णनीय था। उनके प्रणाम में थी—प्रणम्य के प्रति एक अटूट श्रद्धा-भक्ति।

संघाधीश होने के बाद भक्तगण विभिन्न बहुमूल्य

सामग्रियाँ महाराजजी को उपहारस्वरूप देते थे। लेकिन किसी बहुमूल्य सामग्री के मिलने पर वे उसे अलग निकाल कर आदरपूर्वक रख देते थे--ठाकुर, माँ तथा ठाकुर की संतानों को देने के लिए। उनलोगों को देने में ही उन्हें परम सन्तोष मिलता था। प्रत्येक जाड़े में गर्म वस्त्र सर्वप्रथम उन सबको देते थे। उसके बाद स्वयं लेते तथा दूसरों को देते थे। वे मठ के अन्य शाखा-केन्द्रों में भी ठाकुर, माँ और ठाकुर की सन्तानों के लिए गर्म वस्त्र आदि भेजते थे। इन सारी अच्छी-अच्छी सामग्रियों का स्वयं कभी प्रयोग नहीं करते थे। उनकी अपनी व्यावहारिक सामग्री अतिसाधारण थी।

एक बार एक भक्त ने महाराजजी की दृष्टि पड़ने से पहले एक बहुमूल्य ऊनी चादर उनके चरणों में समर्पित की। महाराजजी का ध्यान जब उस सुन्दर एवं मूल्यवान चादर पर आकृष्ट हुआ तब उन्होंने आक्षेप करते हुए कहा—"पहले मालूम होने पर इस चादर को ठाकुर को समर्पित कर पाता। मैंने नहीं समझा कि यह इतनी सुन्दर, इतनी मूल्यवान चादर है।" चूँकि वह चादर उनके चरणों पर थी, इसलिए उसे ठाकुर को अब वे नहीं दे सकते थे। इसका अफसोस महाराजजी को बहुत दिनों तक था।

फलों में शरीफा महाराजजी को अत्यन्त प्रिय था। एक बार वे हैदराबाद गये। वहाँ अच्छा शरीफा मिलता है, यह सोचकर एक भक्त को उन्होंने एक टोकरी अच्छा शरीफा बेलुड़ मठ में ठाकुर के हेतु हवाई जहाज से भेजने को कहा। उनका आदेश पालन करने पर वे उस भक्त पर बहुत खुश हुए।

ठाकुर की सेवा में कणमात्र की त्रुटि भी महाराजजी सह नहीं सकते थे। बेलुड़ मठ में ठाकुर की सेवा भलीभाँति हो, इस ओर उनकी तीक्ष्ण दृष्टि थी। एक बार किसी शाखा केन्द्र के अध्यक्ष के सम्बन्ध में उनको जब कहा गया कि वे एक दक्ष कर्म-परिचालक हैं। तब उनका कहना था कि वे दक्ष परिचालक हो सकते हैं, पर सेवक नहीं हैं।

श्रीरामकृष्ण केन्द्रित इस महाजीवन की महायात्रा की प्रस्तुति भी पूर्णरूप से शंकाहीन उनकी अपनी परिकल्पना के अनुसार ही हुई। १३ मार्च, ८५' महाप्रस्थान का दिन। १२ तारीख को संध्या के बाद एक सेवक के माध्यम से मंदिर से चरणामृत मंगवाकर उसे चम्मच के द्वारा अपने मुँह में डालने को उन्होंने कहा। रात्रिकाल में ठाकुर और माँ के मंदिर में अर्घ्य भेजा। दूसरे दिन पुनः सभी मंदिर में अर्घ्य भेजा गया—यह सुनकर उन्होंने अत्यंत सन्तोष प्रकट किया।

दोपहर बारह बजने के बाद से ही अस्वस्थता का दौर चला और जल्द ही अवनति की ओर अग्रसर होता चला गया। छाती में असहनीय दर्द के साथ ही श्वास-कष्ट भी होने लगा। कष्ट को कम करने हेतु ऑक्सीजन दिया जा रहा था। पर उन्होंने दवा लेने से इन्कार कर दिया। कई एक बार थोड़ा-थोड़ा चरणामृत ग्रहण किया। कुछ क्षण बाद उन्होंने सेवकों से उन्हें बिछावन पर बैठा देने को कहा। 'बैक रेस्ट' के सहारे बैठा देने के बाद उन्होंने गंगाजल माँगा और मुँह में सामान्य रूप से छिड़कते हुए चरणामृत ग्रहण किया। उनके मुखमण्डल पर परम सन्तोष का पूर्ण प्रकाश था। उन्होंने ठाकुर, माँ और स्वामीजी को प्रणाम करने के उद्देश्य से हाथ जोड़ा। इस जीवन में उनलोगों को अन्तिम प्रणाम किया। अन्त में उनको लिटा दिया गया। धीरे-धीरे उन्होंने तीन बार साँस ली। तीसरी साँस ही उनकी अन्तिम साँस थी। श्रीरामकृष्ण केन्द्रित इस जीवन की परिसमाप्ति कर उन्होंने अमृतलोक की यात्रा की।

□

स्मृति-अर्घ्य

—स्वामी चैतन्यानन्द
सहायक, उद्बोधन (बंगला मासिकी)

[स्वामी चैतन्यानन्द लिखित प्रस्तुत संस्मरण उद्बोधन के चैत्र १३९१ संवत् के अंक से साभार गृहीत एवं अनूदित हैं ।—सं०]

१२ जनवरी, १९७८ । आज 'रामकृष्ण मिशन इंस्टिट्युट ऑफ कल्चर' में रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के अध्यक्ष श्रीमत् स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज पधारेंगे । कल्चर के संन्यासी-ब्रह्मचारी एवं कार्यकर्त्तागण सभी सबेरे से व्यस्त हैं । जिस-जिस के ऊपर जिस-जिस कार्य का भार दिया गया है उसे वह सयत्न कर रहा है । फिर भी सबको एक भय है कि जाने क्या हो ! पूज्यपाद महाराज की सेवा में जिससे कोई त्रुटि न हो उस ओर सबकी सतर्क दृष्टि है । किसी एक ब्रह्मचारी के ऊपर पूज्यपाद महाराज के लिए रसोई का भार पड़ा है । उसे बड़ा डर है । वह रसोई-बसोई कुछ भी जानता नहीं । यद्यपि ब्राह्मण रसोइया ही सारी रसोई पकायेगा—तब भी उसके मन में इच्छा है कि वह अपने हाथ से भी कुछ रसोई बनाकर महाराज को खिलाये । इसलिए वह सुबह से ही काफी भयभीत है ।

महाराज पूर्वाह्न १० बजे बेलुड़ मठ से 'कल्चर' में आ पहुँचे । उनके पदार्पण के साथ-साथ जैसे उत्सव आरम्भ हो गया । सभी खूब आनन्द में हैं । वे सब के साथ इस प्रकार व्यवहार करते हैं जिससे गुरु गंभीर घना परिवेश हल्का हो गया है और आनन्द का फव्वारा छूट गया है । सब को सहज स्वच्छन्द करने के लिए वे हँसते-हँसते सब के घर-घर में जाकर देखने लगे कि कौन कहाँ किस प्रकार रहता है । रास्ते में रसोई में व्यस्त ब्रह्मचारी को उन्होंने देखा । एक दूसरे ब्रह्मचारी ने पूज्यपाद महाराज को उक्त ब्रह्मचारी का परिचय करा-कर कहा : 'महाराज, यह आपके लिए भोजन की व्यवस्था कर रहा है ।' महाराज ने हँसते-हँसते जिज्ञासा की : 'तुम्हारा मेनू (menu) क्या है ?' उन्होंने ऐसी सहृदयता से बातें कीं कि ब्रह्मचारी के मन से भय और जड़ता एक क्षण में ही समाप्त हो गयी । वह उन्हें बिलकुल अपना जैसा समझने लगा । उसने भी हँसकर कहा—'महाराज, मेनू अभी नहीं बताऊँगा । सरप्राइज (Surprise) दूँगा आपको ।' सुनकर महाराज भी हँस पड़े । सभी उपस्थित जन हँस उठे ।

वे थे सदा आनन्दमय । इसी से सघन गुरु गंभीर परिवेश को वे आनन्द मुखर कर देते थे । भय-संभ्रम का गुरु-गंभीर भाव मिटकर वहाँ विराजने लगता—एक श्रद्धायुक्त अनाविल आनन्द का परिवेश । पूज्यपाद महाराज दिन भर वहाँ थे । पूरे दिन भर ही आनन्द का दौर चला था ।

* * *

बेलुड़ मठ । १९७७ का कोई समय । एक ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारी प्रशिक्षण केन्द्र में है । वह खूब वेदान्त चर्चा करता है । कुछ दिन ऐसा करने के बाद उसकी अपनी धारणा हुई—वह अद्वैत-साधना के उपयुक्त है । उस अनुयायी ने उस भावना का चिन्तन करना शुरू कर दिया । इसी भाव में कई महीने बीत गये । एक दिन उसके मन में हुआ—इस भाव से अद्वैत-साधन करना ठीक हुआ है या नहीं, पूज्यपाद महाराज से एक बार इसकी जिज्ञासा करना अच्छा होगा । यही सोचकर उसने महाराज के साथ

बातें करने के लिए एक समय निर्धारित कर लिया।

शाम को आरती के बाद महाराज के पास जा उन्हें प्रणामकर ब्रह्मचारी ने कहा : महाराज, अद्वैत-भाव से साधना करना मुझे अच्छा लगता है। क्या उस भाव से मैं साधना करूँगा ?

महाराज : शरीर-बोध रहने पर अद्वैत भाव से साधना नहीं की जा सकती। तुम्हारे गाल पर यदि कोई चाँटा मारे तो क्या तुम उसे सहन कर सकोगे ? तुम्हारे मन में क्या उसके प्रति कोई प्रतिक्रिया नहीं होगी ?

ब्रह्मचारी बेवकूफ की भाँति कह बैठा : महाराज, आपके आशीर्वाद से मैं चाँटा मारना सहनकर पाऊँगा।

महाराज : एक बात तो सहन कर पाते नहीं हो, तब फिर चाँटा मारना सहन करोगे ? अद्वैत-साधना बड़ा कठिन है। तुम्हारा वह पथ नहीं है।

नाछोड़ ब्रह्मचारी फिर कह बैठा : महाराज, अद्वैत-भाव से चिन्तन करना मुझे खूब अच्छा लगता है।

महाराज ने विरक्त होकर कहा : नाला तो लाँघ नहीं पाता और फिर नदी लाँघना चाहता है !

ब्रह्मचारी : तब क्या अद्वैत-वेदान्त की पुस्तक पढ़ना छोड़ दूँगा ? इस विषय की पुस्तक पढ़ने पर मेरे मन में इस भाव का खूब उद्दीपन होने लगता है।

महाराज : नहीं, पुस्तक पढ़ना नहीं छोड़ोगे। वेदान्त पढ़ना वैराग्य-उत्पादन के लिए।

ब्रह्मचारी के सारे संदेह मिट गये। वह महाराज को प्रणाम कर घर से बाहर निकल आया।

* * *

१९७७ ई० की एक और घटना। बेलुड़ मठ, ब्रह्मचारी-प्रशिक्षण केन्द्र। सभी ब्रह्मचारी आरती के बाद पूज्यपाद महाराज को प्रणाम करने जाते। एक दिन दो ब्रह्मचारी सबके साथ प्रणाम करने नहीं जा सके—एक काम से वे ठहर गये थे। सब महाराज को प्रणाम कर लौट आये तब दोनों व्यक्ति महाराज को प्रणाम करने गये। उसी समय उनके कमरे से दो भक्त बाहर आये। उनके चेहरे और पोशाक से दोनों ब्रह्मचारियों को लगा कि वे धनी और शिक्षित थे। उनके निकल जाने पर दोनों ब्रह्मचारी प्रणाम करने घुसे। पाँव पर हाथ रखकर प्रणाम करने जाने पर महाराज ने उनलोगों को रोका। उन दोनों को भय हुआ। उन्होंने सोचा : महाराज ने उनलोगों को प्रणाम करने से क्यों रोका ? उन्होंने ऐसा कौन-सा अन्याय-किया है कि आज उन-लोगों को प्रणाम करने का अधिकार नहीं ? ऐसा जिस समय वे सोचते हैं तभी मठ का नाई मूरतराम प्रतिदिन की भाँति उस दिन भी महाराज को साष्टांग प्रणाम करने गया। महाराज ने उसको भी रोका। उसने उसी समय कर जोड़कर महाराज से जिज्ञासा की : महाराज, मैंने कौन-सा अन्याय किया है कि मुझे आपने प्रणाम करने से वर्जित किया है। तब महाराज ने कहा : जो थोड़ा पहले प्रणाम कर गये हैं वे सब भले नहीं हैं। तुम......से कहो थोड़ा गंगाजल ले आने के लिए। मूरतराम सेवक को पुकारने गया। विस्मय से निर्वाक होकर पीछे खड़े दोनों ब्रह्मचारियों ने स्पष्ट रूप से लक्ष्य किया था कि महाराजजी के पैर जैसे तब भी पीड़ा से अकड़ रहे थे। सेवक ने गंगाजल से उनके पाँव धो दिये। तब महाराज ने भक्त मूरतराम को प्रणाम करने दिया। बाद में दोनों ब्रह्मचारी भी उन्हें प्रणाम कर बाहर आये। उन्होंने सोचा : महाराज स्वयं दूसरों का पाप ग्रहण करते हैं, अन्य किसी को वह पाप स्पर्श नहीं कर पाये, इसके लिए कितनी सतर्कता उनमें है !

* * *

किन्हीं एक नये संन्यासी को केदार-बदरी-गंगोत्री आदि तीर्थ-दर्शन एवं कुछ दिनों के लिए उत्तराखण्ड में तपस्या करने की इच्छा है। तीर्थ-यात्रा के तीन महीने पहले से ही हरिद्वार का एक टिकट कटा लिया है

उन्होंने, क्योंकि पूजा के समय ट्रेन का टिकट पाना बड़ा मुश्किल है। आनन्द-उत्साह से भरकर नये संन्यासी प्रस्तुत होते हैं—शीतकाल के कपड़े-वस्त्र रुपये-पैसे सारी वस्तुओं का संग्रह कर लिया है।

२४ सितम्बर, १९८४। यात्रा के दो दिन पहले वे पूज्यपाद महाराज का आशीर्वाद लेने मठ गये। उन्होंने प्रणाम कर निवेदन किया: महाराज, २४ तारीख की रात में दून एक्सप्रेस से केदार-बदरी-गंगोत्री तीर्थ-दर्शन के लिए यात्रा कर रहा हूँ।

पूज्यपाद महाराज ने कहा: बिहार के सहरसा जिले में बाढ़ से हजारों-हजार मनुष्य मर रहे हैं। उनलोगों की सेवा करने जाओगे या पहले केदार-बदरी के दर्शन को जाओगे? इन दोनों में कौन-सा तुम्हें अच्छा लगता है? स्वामीजी दु:ख-विलष्ट मनुष्यों की सेवा की बात कहते हैं। उनलोगों की सेवा नहीं कर तुम तीर्थ जाओगे?

नवीन संन्यासी कुछ देर तक चुप रहे। पूज्यपाद महाराज फिर बोले: क्या उनलोगों की सेवा करोगे, या तीर्थ जाओगे?—दोनों में से कौन तुम्हें अच्छा लगता है?

नवीन संन्यासी: महाराज, आप जो आदेश देंगे, मैं वही करूँगा।

महाराज: तुम कल सोचकर कहो। बाद में भी तीर्थ जाने में कोई क्षति नहीं है। किन्तु इनलोगों की सेवा की अभी जरूरत है। आज जाओ, कल आकर मुझे बताना कि तुम्हारी क्या इच्छा है।

नवीन संन्यासी ने दूसरे दिन सबेरे मठ जाकर पूज्यपाद महाराज को सूचित किया: महाराज, मैं रिलीफ में ही जाऊँगा।—सुनकर महाराज ने खूब खुश होकर उनके मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। तीर्थ जाने की तीन महीने की प्रस्तुति सब समाप्त हो गयी। नये संन्यासी २३ सितम्बर को अन्यान्य संन्यासी-ब्रह्मचारियों के साथ पटना के लिए रवाना हुए।

२४ तारीख की दोपहर को वे सब पटना आश्रम पहुँच गये। बिहार सरकार ने बाढ़ के कार्य के लिए हर प्रकार की सहायता करने का वचन दिया था। किन्तु, कई कारणों से सहायता करने में सरकार की ओर से देर हो गयी थी। देर से रक्षा-कार्य जब आरम्भ हुआ तब देखा गया कि वहाँ के लोगों की सेवा की आवश्यकता बहुत कम गयी है—इतने आदमियों की वहाँ जरूरत नहीं। फलस्वरूप कई व्यक्ति बेलुड़ मठ चले आये। एवं उक्त नवीन संन्यासी को भी सूचित किया गया—पूज्यपाद महाराज ने उन्हें इस बार तीर्थ-दर्शन की अनुमति दी है। नवीन संन्यासी तो आनन्द से विभोर हो गये। वे सोच भी नहीं पाये थे कि पूज्यपाद महाराज ने उन्हें जाने की अनुमति दी है। वे अवाक् होकर सोचने लगे: पूज्यपाद महाराज की दु:ख से पीड़ित मनुष्य के लिए एक ओर कैसी अपार करुणा है, और दूसरी ओर नवीन साधु के तीर्थ-दर्शन और तपस्या के प्रयोजन की भी उपेक्षा वे नहीं करते। मनुष्य की सेवा और ध्यान-तपस्या-पूजा उनके लिए दोनों ही समान हैं। 'Work and Worship' (कर्म एवं उपासना) तथा 'Work is worship' (कर्म ही उपासना है)—स्वामी विवेकानन्दजी की इन दोनों ही शिक्षाओं ने पूज्यपाद वीरेश्वरानन्दजी महाराज के जीवन में साकार रूप धारण कर लिया था।

एक परिप्रश्न

—स्वामी अमेयानन्द
श्रीमातृ मंदिर : जयरामबाटी (प० बंगाल)

आज जिस घटना का उल्लेख मैं करने जा रहा हूँ, वह लगभग तेइस वर्ष पहले की बात है। उन दिनों रामकृष्ण मठ व रामकृष्ण मिशन के सह-सचिव पद को अलंकृत किये हुए थे परम पूजनीय श्रीमत् स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज। बेलुड़ मठ स्थित ब्रह्मचारी प्रशिक्षण में मैं उस समय अध्ययनरत था। वहाँ की शिक्षा समाप्त करने के पश्चात्, ब्रह्मचर्य मंत्र से दीक्षित होकर हम सब ब्रह्मचारिगण सभी पूजनीय गुरुजनों से विदाई माँगने गये। अन्त में हम सब पूज्यपाद महाराज जी के पास आये। उन्हें प्रणाम करने के पश्चात् हम सबको उनके पदप्रान्त में बैठने की आज्ञा मिली। हमारे एक सहतीर्थ ब्रह्मचारी भाई ने अत्यन्त ही विनयपूर्वक महाराजजी से कहा, "महाराज, आज के इस शुभ अवसर पर हमलोगों को कुछ उपदेश दीजिए।" एक मधुर मुस्कान के साथ कुछ देर वे मौन रहे। फिर अपने मौन में उपसंहार लाते हुए उन्होंने कहा, "उपदेश तो बहुत सुना है तुमलोगों ने। अगर कोई प्रश्न हो तो पूछो।" हम सब अपने-अपने सामर्थ्य एवं रुचि के अनुसार उनसे प्रश्न पूछने लगे। वे भी अत्यन्त निपुणता के साथ सभी प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर देने लगे। प्रश्न करने की बारी अब मेरी। मैंने पूछा, "अच्छा महाराजजी, हर एक ब्रह्मचारी तो तीव्र वैराग्य लेकर ही मठ में योगदान करता है। लेकिन अक्सर देखने को आता है कि कुछ दिन मठवास करने के उपरान्त कोई-कोई अपने पूर्वाश्रम में वापस चला जाता है। यह वैराग्य के शिथिलीकरण का परिणाम हो सकता है। लेकिन मेरा प्रश्न यह है कि आप सब महान् पुरुषों के दर्शन एवं सत्संग से तो उस मूल वैराग्य में वृद्धि होनी चाहिए। लेकिन ऐसा न होकर वह मन्द हो जाता है। फलस्वरूप वह अपने बढ़ाये हुए कदमों को इस श्रेय मार्ग से खींच लेता है।" मुस्कुराते हुए महाराज कहने लगे, "देखो, हमलोगों को प्रेमानन्दजी महाराज कहा करते थे— 'बेलुड़ मठ में एक भूत रहता है। वह जिसको रखे, केवल वही रह सकता है, अन्यथा भाग जाना पड़ता है। ······'हम सब हँसने लगे। महाराज चुप हो गये। हम सब भी चुप रहे उनके साथ।

थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा, "क्या उत्तर पसन्द नहीं आया?" तुरन्त मैंने कहा "नहीं"। तब उन्होंने कुछ गम्भीरतापूर्वक कहा, "देखो, सभी कुछ प्रारब्ध का ही परिणाम है। इसके अलावा तुम यह बताओ कि आखिर किसको देखकर तुम अपना ब्रह्मचर्य-जीवन गठन करने आये हो— मुझको या ठाकुर-माँ-स्वामीजी को!!!" मैंने कहा, "जी, ठाकुर-माँ-स्वामीजी की वाणी सुनकर।" यह सुनकर उन्होंने कहा, "तो फिर हमलोगों से क्यों आशा करते हो? अगर हमलोगों से कुछ मिले तो अच्छी बात, न मिले तो भी कुछ फिक्र न करना। सर्वदा याद रखना सन्त-जीवन तो एकक जीवन है। किसी के प्रति कुछ अपेक्षा न रख अपने ही विचार के माध्यम से अपने वैराग्य को बढ़ाना होगा। किसी गुरुजन से कछ मिले या न मिले, हताश होने का क्या है?"

इतना कहकर अब वे कहने लगे, "क्या अब उत्तर पसन्द आया?" हमसबने हामी भरी। इसके बाद हम सबने पुनः प्रणाम किया महाराजजी को एवं फिलहाल तो विदाई ले ली। यद्यपि एक लम्बा अरसा बीत चुका है, फिर भी आज तक अपने मानस-पट पर उन ओजस्वी बातों का अनुभव इस प्रकार करता हूँ कि यह उसी दिन की एक घटना है अथवा हाल ही का एक "परिप्रश्न" है?

स्मृति-कथाएँ

—स्वामी सोमेश्वरानन्द
रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना।

(१)

सन् १९७८। पूजनीय प्रेसिडेन्ट महाराज चेरापुंजी आये हैं। बहुत से नर-नारियों को दीक्षा दी। एक दिन आरती के बाद महाराज के पास भक्त लोग आकर बैठे—उनकी बात सुनने के लिए। एक भक्त—'महाराज, कुछ कहिए।' महाराज ने हँसकर कहा—'लेक्चर बहुत हुआ; आज तुमलोग गाना सुनाओ।' भक्त लोगों ने गाना शुरू किया—जय गुरु जय......। थोड़ी देर भजन सुनकर, महाराज ने कुछ अस्वस्थ-होने-सा अनुभव किया। एक साधु को पास बुलाकर—'उनलोगों को कहो—जल्द गाना समाप्त करने के लिए' हमलोगों ने समझा कि महाराज की तबीयत ठीक नहीं है। भक्त लोगों ने भी गाना बंद कर दिया। भजन समाप्त होने के बाद महाराज माइक लेकर सबसे कहने लगे—'देखो, यह ठीक नहीं है। गुरु तो एक ही हैं—श्रीरामकृष्ण देव। यह कभी मत कहो कि वह मेरा गुरु है, यह मेरा गुरु है। सदैव याद रखो कि सबके गुरु श्रीरामकृष्णदेव ही हैं।'

यह कहकर महाराज ने फिर हँस कर कहा—'चलो, दूसरा भजन शुरू करो।'

(२)

पुरुलिया। महाराज पधारे। रविवार। मंदिर में महाराज दीक्षा दे रहे थे। उस दिन आश्रम में छात्रों का क्रिकेट-मैच था। छात्रों की इच्छा हुई कि महाराज के साथ टीम की फोटो खिचावें। उनलोगों ने एक साधु से कहा इसके बारे में। उन्होंने (साधु ने) कहा—'देखो, दीक्षा के बाद महाराज क्लान्त रहेंगे, तुमलोग दूसरे दिन फोटो खिचवाना।' वे लोग स्कूल के छात्र थे। उन लोगों ने कुछ नहीं कहा। दीक्षा देने के बाद प्रेसिडेन्ट महाराज मंदिर के बाहर आये। बाहर भी बहुत भक्त थे। एक छात्र ने महाराज को प्रणाम कर, उनसे कहा—'महाराज, कल आपके साथ हमलोग फोटो उतरवायेंगे; हमारी पूरी टीम।' महाराज ने पूछा—'कल क्यों?' छात्र—'आज होने से तो अच्छा ही होता, क्योंकि आज ही मैच हो रहा है। लेकिन, आज दीक्षा देने के बाद आप क्लान्त हैं।' महाराज ने हँसकर कहा—'क्या, तुम मुझे बूढ़ा समझते हो? अभी चलो फोटो उतरवायेंगे।' छात्रों को बहुत आनन्द हुआ। तुरन्त पूरी टीम को बुलाया। महाराज को कुर्सी पर बिठाकर, कुछ लड़के सामने बैठे, कुछ ने पीछे खड़े होकर पोज दिया। कैमरामैन आया तो महाराज ने हँसकर एक लड़के से कहा—'अरे, क्रिकेट-बैट (Cricket bat) हमारे हाथ में दो। बैट लेकर महाराज ने पोज दिया और कैमरामैन से पूछा—'क्यों जी, मेरा पोज प्लेयर की तरह लगता है तो?' सबने हँस दिया। लड़कों को पता नहीं था कि कॉलेज-जीवन में महाराजजी बहुत अच्छे प्लेयर थे।

(३)

बेलुड़ मठ। प्रेसिडेन्ट महाराज के पास एक तरुण ब्रह्मचारी गये। कुछ बात-चीत होने के बाद महाराज ने कहा—'पढ़ो, खूब पढ़ो। इतिहास समाज-विज्ञान, अर्थशास्त्र—सबकुछ जानना चाहिए। देखो, पण्डित लोग क्या कहते हैं, आधुनिक ज्ञान-विज्ञान क्या कहता है—देखो, पढ़ो। और साथ-ही-साथ देखो, स्वामीजी (विवेकानन्द) ने क्या कहा! Comparative

study (तुलनात्मक अध्ययन) करो। मूर्ख होकर मत रहना। Intellectual life (बौद्धिक जीवन) बनाओ। तब तो समझोगे, स्वामीजी क्या चाहते थे। देश-विदेश से आदमी आ रहे हैं मिशन में। उनलोगों को समझाना पड़ेगा। Intellectual (बौद्धिक) और Spiritual life (आध्यात्मिक जीवन) साथ-साथ रहेंगे।'

(४)

एक तरुण साधु ने महाराज से पूछा—'महाराज, आपकी जन्म-तिथि और सन् क्या है ?' महाराज ने डाँट दी—'इनसे तुम्हारा क्या मतलब ? Personality Cult (व्यक्ति-पूजा) पर ध्यान मत दो।'

पूज्य गुरुदेव : स्मृति के दर्पण में

श्रीमती अपर्णा सेन
पटना।

परम पूज्य गुरुदेव स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज के सम्बन्ध में मेरी तरह एक साधारण व्यक्ति का कुछ कहना एक धृष्टता मात्र है। मैं जो कुछ भी कह रही हूँ, उसके लिए महाराजजी मुझे आशीर्वाद करें। सन् १९६१-६२ में मैंने उनका प्रथम दर्शन किया, जब वे रामकृष्ण-संघ के महासचिव थे। तत्पश्चात् स्वामी यतीश्वरानन्दजी की महासमाधि के बाद बेलुड़ मठ से लौटकर मैंने उन्हें प्रणामपूर्वक एक पत्र भेजा। तब से लेकर उनकी शारीरिक अस्वस्थता के समय तक महाराजजी हमलोगों के सभी पत्रों के उत्तर में आशीर्वाद भेजते रहे। इन पत्रों से ही मैं कह सकती हूँ कि उनके साथ हमारा सम्बन्ध संघगुरु तक ही सीमित नहीं था अपितु, पिता एवं संतान की तरह था। हमलोगों को जब भी किसी समस्या का सामना करना पड़ा, उसे उन्हें बताने में हमलोगों को कोई भी संकोच नहीं हुआ। जब भी हम लोग उनसे मिलने गये, हमलोगों को लगा कि वे हमलोगों को ही सबसे ज्यादा चाहते हैं। परन्तु बाद में पता लगा कि प्रत्येक के प्रति उनका ऐसा ही व्यवहार था और प्रत्येक व्यक्ति इसी प्रकार सोचता था। जब वे पटना आते थे, अपने बहुत बड़े सौभाग्य से मैं उनके लिए खाना पकाकर ले जाती थी एवं उन्हें खाना परोसने का सौभाग्य भी मुझे प्राप्त हुआ था। उनका आहार अत्यंत अल्प था। भक्त लोग जो कुछ भी लाते थे, वे सब उनके सामने खाने के समय दिये जाते थे। वे चम्मच से थोड़ा-थोड़ा खाते थे।

हमारी प्रयोगशाला एस्सेन एसोशिएट प्रा० (लि०) की नींव भी कृपापरवश उन्होंने ही रखी थी। किंतु, यह शर्त रखी कि उनका नाम वहाँ किसी भी जगह नहीं रहे। प्रयोगशाला का निर्माण हो जाने के पश्चात् महाराजजी ने एक बार आकर श्री श्रीठाकुर की पूजा की। मेरे पति डा० दिलीप सेन ने एक बार १९७६ में निश्चय किया कि वे विलायत जाकर वहीं बस जायेंगे। इसपर उन्होंने कहा कि "तुम कितने लोगों को नौकरी दे रहे हो, तुम क्यों जाओगे ? यहीं रहो।" स्वामी यतीश्वरानन्दजी महाराज एवं स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराजजी के आशीर्वाद से भारत में सबसे बड़ी प्राइवेट प्रयोगशाला के रूप में इसे भारत सरकार की ओर से मान्यता दी गयी है। हमलोग प्रत्येक क्षण यह अनुभव करते हैं कि उनका आशीर्वाद हमलोगों के साथ है।

१९७४ के शीतकाल में उनसे अनुमति लेकर मैंने एक छोटे-से 'शिल्प प्रतिष्ठान' का शुभारम्भ किया। 'शिल्पी सेवा संघ' उन्हीं का दिया हुआ नाम है। इसमें उनके उपदेशानुसार दुःखी महिलाओं को प्रशिक्षण देकर सिलाई-बुनाई एवं विभिन्न प्रकार की हस्तकलाओं में पारंगत कराया जाता है। ये महिलाएँ इनसे अपना जीविकोपार्जन करती हैं।

हमारा लड़का बावला जब मेडिकल कॉलेज में भर्ती नहीं हो पा रहा था तब हमलोगों ने तय किया कि उसे मनिपाल मेडिकल कॉलेज में पढ़ाएँगे। पू० महाराजजी से अनुमति ली एवं श्री टी० ए० पाई के नाम महाराजजी ने एक चिट्ठी लिख दी जिससे बावला दाखिल हो सके। अन्त में मनिपाल मेडिकल कॉलेज ने सूचित किया कि एक लाख पच्चास हजार रुपया देकर बावला को वहाँ भेजा जाय। बैंक ड्राफ्ट इत्यादि बन जाने के बाद पू० महाराज एवं भरत महाराजजी की अनुमति के लिए उन्हें फोन किया गया। पू० भरत महाराज ने सुनते ही कहा—"प्रेसिडेंट महाराज क्या बोलते हैं, देखो।" दूसरे दिन सुबह जाने की तैयारी पूरी थी। उसी दिन रात को मेरे पति ने पू० महाराजजी से फोन पर बातें की। उन्होंने कहा, "इतना रुपया देकर बावला को मनिपाल में मत पढ़ाओ, शिक्षा के नाम पर व्यापार ठीक नहीं है।" फोन छोड़ने के पूर्व उन्होंने एक बार पुनः कहा कि इतना रुपया देकर बावला को मनिपाल में मत पढ़ाओ। बाद में उनसे मिलने पर उन्होंने कहा कि बावला को विदेश भेज दो। वैसे महाराज के आशीर्वाद से बावला अंत में बिहार में ही मेडिकल कॉलेज में भर्ती हुआ। रूमी (मेरी लड़की) शादी के बाद अमेरिका जाने के पहले अपने पति के साथ जब बेलुड़ मठ गयी तब पू० महाराजजी ने उन दोनों को आशीर्वाद दिया एवं यह जानना चाहा कि रूमी विदेश में पढ़ाई कर पायगी कि नहीं। वह पढ़ाई कर पायगी, यह जानकर महाराज बहुत प्रसन्न हुए एवं पढ़ाई न छोड़ने के लिए कहा। अभी वह आइओवा विश्वविद्यालय में कम्प्यूटर साइन्स लेकर अध्ययन कर रही है एवं पू० महाराज जी के आशीर्वाद से पढ़ाई-लिखाई बहुत ही अच्छी तरह से कर रही है। इस प्रकार पूजनीय महाराज हमारी आध्यात्मिक तथा सांसारिक सभी वस्तुओं में मार्ग-दर्शन करते थे तथा हमारे लिए वे पिता स्वरूप ही थे।

★

मेरे कुछ संस्मरण

श्री रामछविला सिंह
आरक्षी अधीक्षक, अपराध अनुसंधान विभाग, पटना

बात १९६७ की है। उसी वर्ष मेरी दीक्षा रामकृष्ण मिशन आश्रम; पटना में पूज्य श्रीगुरुदेव स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज द्वारा हुई थी। दीक्षा के पूर्व उन्होंने प्रत्येक दीक्षार्थी से अलग-अलग साक्षात्कार किया। मुझसे इष्टदेव का नाम पूछा। मैंने बतलाया। फिर उन्होंने कहा और क्यों नहीं? मैंने कहा: यही ठीक है। फिर उन्होंने इच्छित मंत्र से दीक्षा दी। दीक्षा के बाद कहा: इष्ट में श्रीठाकुर को ही देखना और सभी देवी-देवों में उन्हीं को जानना। यह भाव अब ऐसा हो गया है कि चाहे जहाँ जाऊँ हर प्रतिमा में श्रीठाकुर ही नजर आते हैं। फिर जोर लगाने पर ही ध्यान से वे जा पाते हैं।

एक साल बाद मेरी पत्नी पर भी गुरु-कृपा हुई। रांची में उनको दीक्षा मिली। मेरी पत्नी ने बतलाया कि श्रीगुरुदेव ने फूल-बेलपत्र दिया और कहा कि जाकर श्रीठाकुर के निकट कहो कि जन्म जन्मांतर के पाप सब अर्पित कर रही हूँ। उस समय वे यह सोचकर

रो पड़ीं कि वे ठाकुर को कोई अच्छी वस्तु नहीं देकर क्या कह रही हैं। सब उनकी कृपा!

हम दोनों दीक्षा के बाद बेलुड़ मठ गये। श्रीगुरुदेव ने अपनी निजी गाड़ी हमें घूमने को दी और श्रीठाकुर के सभी लीला-स्थलों को देखने कहा। उन्होंने अपने निकट बाल-बच्चों सहित बैठने का मौका दिया। बच्चों को वे बड़ा प्यार करते थे। उन्हें काफी चाकलेट दिया करते थे। उस समय मुझे दो बच्चियाँ थीं जिन पर भी श्रीगुरुदेव ने कृपा की और उन्हें मंत्र दीक्षा दी।

बड़ी लड़की की शादी के लिए हम दोनों (पति-पत्नी) बड़े चिंतित थे। एक रात पत्नी ने स्वप्न देखा: पूज्य गुरुदेव स्वयं अपने हाथों तूलिका ले कई रंगों से बड़ी लड़की के मुंह पर चित्रकारी कर रहे हैं। और लड़की बड़ी भाग्यवान निकली। उसे अच्छा घर-वर तथा जीवन की सारी सुख-सुविधाएँ प्राप्त हुईं। अभी वह रसायनशास्त्र में एम. एस-सी. की पढ़ाई के बाद डाक्टरेट कर रही है। दूसरी लड़की भी एम. ए. कर लेक्चरर बनने की तैयारी कर रहीहै। उसकी भी शादी अच्छी हुई है।

मुझे श्रीगुरुदेव से बेलुड़ में मिलने के कई मौके मिले। अपने स्वभाव के कारण पूर्व में सूचित नहीं कर पाता था। फिर क्या आश्चर्य! जैसे वे मुझे आश्रम में दर्शन देने को बैठे हैं। थोड़ी देर होने पर बाहर निकल जाते। मैं उनके दर्शन करने तथा उनसे बातें करने में कभी निराश नहीं हुआ।

मुझे श्रीगुरुदेव को पत्र लिखने को कुछ भी नहीं मिलता। वचनामृत में मुझे सभी प्रश्नों के उत्तर मिल जाते थे।

श्रीगुरुदेव ठाकुर की सन्तानों को कुछ काम करने को उत्साहित करते थे। मैंने एक समय उनसे नौकरी छोड़ने की जिज्ञासा की। उन्होंने मना कर दिया। कालांतर में पाता हूँ कि उन्होंने ठीक ही मनाही की। पुलिस विभाग की नौकरी में रहकर बहुत कुछ उनका काम करने का मौका मिला है। मैंने जो कुछ भी यश सम्मान प्राप्त किया, सभी उनकी कृपा के फल हैं।

श्रीगुरुदेव ने गाँवों में जाकर काम करने का दिशा-निर्देश किया था। मैं उस दिशा में उनकी कृपा का सम्बल लेकर अग्रसर हो रहा हूँ।

*

एक संशय: एक समाधान

—श्रीराय मनेन्द्र प्रसाद

पटना।

दिसम्बर १९८० में रामकृष्ण मिशन के द्वितीय महाधिवेशन का बेलुड़ मठ (कलकत्ता) में आयोजन किया गया था। इस महाधिवेशन में भाग लेने के निमित्त मैंने भी आवश्यक आवेदन-पत्र सचिव, रामकृष्ण आश्रम, पटना के माध्यम से भेज दिया था। यथासमय अनुमति प्राप्त हो गयी।

मुझे इस बात की प्रसन्नता थी कि इतने बड़े अधिवेशन में भाग लेकर संसार भर से आये विभिन्न देशों के प्रतिनिधियों द्वारा प्रस्तुत रामकृष्ण मिशन एवं मठ के क्रिया-कलापों की जानकारी मिलेगी, आध्यात्मिक विषयों की चर्चा से ज्ञान-वर्द्धन होगा तथा सबसे बढ़कर अपने गुरुदेव (पूज्यपाद श्रीमत् स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज) के भी नित्य दर्शन होंगे।

ठीक समय पर बेलुड़ मठ पहुँचकर मंदिर में श्री श्रीरामकृष्ण को प्रणाम करने के उपरान्त जब मैं गुरुदेव के निवास-स्थान पर उन्हें प्रणाम करने पहुँचा तो मुझे बताया गया कि पूरे महाधिवेशन की अवधि में व्यक्तिगत रूप से प्रणाम करने की व्यवस्था बन्द कर दी गयी है। चूँकि देश-विदेश से लगभग दस हजार प्रतिनिधि आये हुए थे, इसलिए, ऐसा करना पड़ा था।

स्वभावतः व्यक्तिगत साक्षात्कार या प्रणाम की व्यवस्था करना सर्वथा असंभव था।

गुरुदेव के आशीर्वचनों के पश्चात् निर्धारित समय पर महाधिवेशन आरंभ हुआ। विशाल पंडाल में अपने स्थान पर बैठकर ही पूज्य गुरुदेव का दर्शन किया और उन्हें मन-ही-मन प्रणाम किया। मुझे इस बात से संतोष था कि महाधिवेशन की अवधि (लगभग एक सप्ताह) में इसी प्रकार दूर से ही गुरुदेव के दर्शन होंगे एवं उन्हें मानस-प्रणाम करता रहूँगा। इसी बीच एक दिन मेरे मन में एक शंका जगी कि क्या मेरा प्रतिदिन का यह मानस-प्रणाम गुरुदेव तक पहुँचता है और क्या इसे वे स्वीकार भी करते है? उनके हजारों शिष्य इसी प्रकार उन्हें पंडाल से ही प्रणाम करते होंगे। फिर मेरे मन में यह भी संशय उठा कि कहीं इस प्रकार का प्रणाम मात्र औपचारिकता तो नहीं है! इस संशय के निवारण हेतु मैंने मन-ही-मन सोचा कि यदि गुरुदेव अपना हाथ, जो उस समय कुर्सी के हत्थे पर था, उठा देंगे तो मैं समझूँगा कि वे मेरे प्रणाम को स्वीकार कर रहे हैं। अगले ही क्षण मैं यह देखकर अवाक् और रोमांचित हो उठा कि उन्होंने अपना दायाँ हाथ केहुनी से पंजा तक उठाकर (जैसे वे आशीर्वाद दे रहे हों) कुछ ही क्षणों के बाद पुनः यथास्थान रख दिया। मुझे तत्क्षण विश्वास हो गया कि गुरुदेव वस्तुतः अंतर्यामी सच्चिदानन्दस्वरूप हैं तथा एक समर्थ और 'पक्के' गुरु के लिए, जैसा कि शास्त्रों में वर्णित है, सबकुछ संभव है।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परम् ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः॥

मैंने ब्रह्मा-विष्णु-महेश स्वरूप अपने पूज्य गुरुदेव को मन-ही-मन पुनः-पुनः प्रणाम कर आत्मिक तृप्ति का अनुभव किया।

एक चमत्कार

- श्रीमती अंजु प्रसाद
पटना।

घटना सन् १९७८ ई० की है। मेरी मँझली बेटी श्वेता विगत कई महीनों से रुग्ण थी। अच्छे-अच्छे डाक्टरों द्वारा चिकित्सा हो रही थी किन्तु कोई लाभ नहीं दिखाई पड़ रहा था। मैं सोचने लगी कि क्यों न पूज्य गुरुदेव को इस विषय में लिखूँ। अपने पतिदेव से गुरुदेव को पत्र लिखने को कई बार कहा। पर वे यह कहकर टालते रहे कि इन सब विषयों में गुरुदेव को लिखना ठीक नहीं होगा। रोग ठीक नहीं होते देखकर मैं घबड़ाने लगी। माँ का मन! मैं अधीर हो उठी। एक पत्र गुरुदेव को लिख दिया। गुरुदेव ने तुरत ३१.१०.'७८ को पत्रोत्तर दिया। मैंने लिखा था, श्वेता का स्वास्थ्य ठीक नहीं है, किन्तु गुरुदेव ने लिखा 'श्वेता का स्वास्थ्य ठीक नहीं था जानकर दुःखित हुआ।' उन्होंने आगे लिखा "आशा है श्री श्रीठाकुर की कृपा से अब वह स्वस्थ है।" पत्रोत्तर हिन्दी में था और हिन्दी में ही गुरुदेव का हस्ताक्षर भी। आश्चर्य की बात यह हुई कि जिस तारीख को गुरुदेव ने पत्र लिखा था ठीक उसी दिन श्वेता रोग-मुक्त हो गयी थी। यद्यपि गुरुदेव चमत्कार में न तो विश्वास करते थे और न विश्वास करने कहते थे किन्तु उनका पत्र पढ़कर मैं तो हैरान हो गयी। क्या बेलुड़ में ही गुरुदेव ने देख लिया कि अब वह अस्वस्थ नहीं है? क्या उनके आशीष से ही वह चंगी नहीं हो गयी थी? और गुरुदेव इसका श्रेय अपने ऊपर नहीं, बल्कि श्रीठाकुर को देकर क्या हमलोगों के हृदय में श्री श्रीठाकुर के ऊपर अखंड विश्वास उत्पन्न करना नहीं चाहते थे? मुझे तो लगता है कि गुरुदेव पूज्यपाद वीरेश्वरानन्दजी महाराज में साक्षात् ठाकुर ही अवस्थित थे। ◻

एक मधुर स्मृति

—श्री कामेश्वर मिश्र
जिला विकास पदाधिकारी, भागलपुर।

सन् १९८१ ई० की बात है। नवम्बर का महीना रहा होगा। पूज्यपाद स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना में तीन-चार दिनों के लिए निवास कर रहे थे। साथ में पूज्य भरत महाराज भी थे। कनखल रामकृष्ण-मिशन-आश्रम में ठाकुर की मूर्त्ति के अनावरण के लिए प्रेसिडेंट महाराज जा रहे थे। रास्ते में पटना आश्रम में अपने श्रद्धालु भक्तों को दर्शन देने के लिए टिक गये थे।

मुझे भी उस समय प्रेसिडेंट महाराज और भरत महाराज के कुछ नजदीक से दर्शन करने के सुअवसर और सौभाग्य मिले थे। रामकृष्ण मठ और मिशन के द्वितीय-महाधिवेशन में उनका दर्शन करने के बाद यह मेरे लिए दूसरा अवसर था, उनके दर्शन का।

पटना आश्रम ने उन दिनों अनगिनत भक्तों के सतत समागम से एक तरह-से एक धार्मिक मेला-स्थल का रूप धारण कर लिया था। नित्य प्रातः से देर रात तक श्रद्धा-सुमन लिये हुए ठाकुर के हजारों भक्त पू० वीरेश्वरानन्दजी के दर्शन और प्रवचन सुनने के लिए उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा करते रहते थे। स्त्री भक्तों की संख्या कहीं अधिक थी। एकत्रित भक्त-मंडली में से बहुतेरे प्रेसिडेंट महाराज की दीक्षित संतान थे। उन सब की श्रद्धामय भावना देखते ही बनती थी। उस दृश्य को देखकर किसके हृदय में यह विश्वास नहीं होता कि भारतवर्ष वास्तव में धर्मप्राण देश है! हर हृदय ठाकुर के मंदिर का आकार बनकर वहाँ उपस्थित हो गया था।

चेहरे पर मधुर मुसकान, एक दिव्य आभा से युक्त उनकी वह सौम्यमूर्त्ति! एक बालकवत् सरल, निश्छल और आत्मभोला, स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज का वह अलौकिक मुखमंडल आज भी मानस-पटल पर सजीव सामने आ जाता है। उनके आगमन से भक्तों के जीवन में सुख और उल्लास की जो उठती हुई तरंग दृष्टिगोचर हो रही थी, वह विस्मयकारिणी और विमोहक थी। तीन-चार दिनों के लिए ही सही, परन्तु यह मधुर-स्मृति और असीम आनन्द तो श्रद्धालु भक्तों के एक जीवन के लिए पर्याप्त और चिरस्मरणीय है।

फिर, याद आने लगती हैं बेलुड़ मठ के ही स्वामी सत्यरूपानन्दजी महाराज की वे बातें, जो पटना से मुजफ्फरपुर जाते हुए रास्ते में उन्होंने बस में मुझे कही थीं—"मैंने भगवान् को तो नहीं देखा है, मिश्रजी" संतोष महाराज (स्वामी सत्यरूपानन्दजी) कहते जा रहे थे, "परन्तु मैंने उस व्यक्ति को जरूर देखा है जिन्होंने भगवान् को अवश्य ही देख लिया है" प्रेसिडेंट महाराज को लक्ष्य कर उन्होंने ये बातें कही थीं।

अक्टूबर, सन् १९८४ ई० की यह बात होगी। संतोष महाराज बिहार राज्य के सहरसा जिले में बाढ़ से बुरी तरह से प्रभावित लोगों के बीच रामकृष्ण मिशन की ओर से राहत पहुँचाने के सिलसिले में यहाँ आये हुए थे।

और फिर, इस वर्ष १३ मार्च को स्वामी वीरेश्वरानन्द महाराजजी का ठाकुर के चरणों में ब्रह्मलीन हो जाना! सुनकर स्तब्ध रह गया—कुछ देर के लिए। और तब याद आने लगीं बीते क्षणों की ये मधुर स्मृतियाँ!

पटना में स्वामी वीरेश्वरानन्द

--प्रो० विमलेश्वर डे, पी-एच०डी० (लंदन)
पटना ।

मेरा सौभाग्य था कि मैंने अपनी आँखों से पूज्यपाद स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज का, १३ सितम्बर, १९६९ ई० में रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना में पहली बार दर्शन किया था। आश्रम के तत्कालीन सचिव स्वामी महानन्दजी महाराज ने दीक्षा के लिए इच्छुक व्यक्तियों को अध्यक्ष महाराजजी (स्वामी वीरेश्वरानन्दजी) से मिलने के लिए कहा। अपराह्न काल में अध्यक्ष द्वारा आवेदकों का साक्षात्कार लिया गया। मुझे स्मरण है कि साक्षात्कार मंदिर के उत्तरी भवन के एक छोटे-से कमरे में लिया गया था। प्रत्येक आवेदक को बारी-बारी से बुलाया गया था और कुछ मिनटों के लिए गुरु महाराजजी के साथ साक्षात्कार हुआ था। साक्षात्कार देनेवाले चिन्ता, आशा, तथा अनिश्चयता की भावना से कमरे में प्रवेश करते थे लेकिन प्रवेश करते ही गुरु महाराज को प्रणाम कर अपने होंठों पर मधुर-मुस्कान लिये बाहर आते थे। कारण यह था कि गुरु महाराजजी किसी को निराश और हतोत्साह नहीं करते थे।

महाराजजी यहाँ तीन दिनों तक ठहरे थे। दो दिनों तक दीक्षा देने में व्यस्त रहने के कारण तीसरे दिन भक्तों के आग्रह पर उन्होंने भगवद्गीता पर मंदिर से जुड़े हॉल में एक सारगर्भ प्रवचन दिया था। अत्यधिक भीड़ के कारण श्रोतागण हॉल से बाहर खड़े होकर उनके प्रवचन को ध्यानपूर्वक सुन रहे थे। पू० महाराज ने भगवान् कृष्ण के शब्दों में गीता के सारतत्व को समझाया और कहा कि यदि 'गीता' शब्द का उलटकर उच्चारण करें तो इसका उच्चारण होगा 'तागी' यानी 'त्यागी'। त्यागी यह है जो सभी वस्तुओं का प्रभु के लिए त्याग कर देता है। अतः त्याग ही गीता का मुख्य उपदेश है—मूल-मंत्र है।

महाराजजी पुनः दो बार पटना आश्रम में आये थे। दूसरी बार दीक्षा के अतिरिक्त उन्होंने कोई प्रवचन नहीं दिया था। लेकिन वे पुस्तकालय-भवन के ऊपरी भाग में बैठकर भक्तों की जिज्ञासाओं का समाधान किया करते थे। भक्तगण उनके उत्तर से तृप्त हो शान्त और आत्मस्थ हो जाते थे। भक्तों के प्रश्नों को महाराजजी धैर्यपूर्वक मौन होकर पूरे मनोयोग के साथ सुनते थे और उनका उत्तर शान्त चित्त से देते थे। उल्लेखनीय बात यह थी कि सभी प्रश्नों के उत्तर के क्रम में पूज्य महाराजजी श्रीरामकृष्णदेव, श्रीमाँ सारदा एवं स्वामी विवेकानन्दजी की वाणियों की ओर हमलोगों का ध्यान अवश्य आकर्षित करते थे।

पूज्य वीरेश्वरानन्दजी महाराज में धार्मिक उदारता और सहिष्णुता प्रचुर रूप में थी। एक संध्या को आश्रम के पुस्तकालय भवन में भक्तों के प्रश्नों के उत्तर देने के क्रम में एक भक्त ने उनसे पूछा—'महाराज, धर्म-सम्प्रदायों के संत-महात्मा इन दिनों धार्मिक प्रवचन देने आते हैं। क्या हमलोगों का ऐसे सत्-संगों या प्रवचनों में सम्मिलित होना उचित होगा?' उन्होंने तुरंत कहा—'हाँ, क्यों नहीं? जहाँ भी भगवत्-प्रसंग हो उसमें सम्मिलित होने में कोई हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए।"

पूज्यपाद महाराजजी का जीवन सेवा-भाव से कितना ओत-प्रोत था! इस सम्बन्ध में हाल ही में रामकृष्ण मिशन, नरेन्द्रपुर के स्वामी देवेन्द्रानन्दजी ने एक घटना का उल्लेख किया है—बंगला पत्रिका 'देश' के मई, १९८५ अंक में। हिमालय की गोद में स्थित मायावती में स्वामी विवेकानन्द की इच्छानुसार उनके दो विदेशी शिष्य-शिष्या—कैप्टन सेवियर और उनकी पत्नी—ने पर्वतों से घिरे एवं जंगलों से भरे उस स्थान में एक आश्रम की स्थापना की थी। उस आश्रम से ही स्वामी विवेकानन्द की रचनाओं का संपादन तथा प्रकाशन किया जाता था। उन दिनों उस क्षेत्र में कोई डाकघर नहीं था। अंग्रेज अधिकारियों से अनुरोध करने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ था। उसी मायावती आश्रम में एक नवीन संन्यासी का आगमन हुआ था। उन्होंने कहा कि जबतक किसी सरकारी कर्मचारी की नियुक्ति नहीं होती है तबतक डाकिये का कार्य वे स्वयं करेंगे। जब कार्य शुरू हुआ तो उस युवा संन्यासी-डाकिये को देखकर गाँव के लोग आश्चर्य से अभिभूत हो जाते थे। प्रतिदिन कई मील पैदल चलकर डाक ले जाना और घूम-घूमकर उसे घर-घर पहुँचाना—ये कार्य यह युवा संन्यासी ही करते थे। ये तरुण संन्यासी थे—निरभिमान एवं मानव-प्रेमी स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज।

स्वामी विवेकानन्द के आदर्श मंत्र—'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च'—के साकार रूप थे स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज। उनके पूज्य चरणों में मेरे शत-शत प्रणाम अर्पित हैं। □

श्रीमाँ सारदादेवी के संग में : स्वामी वीरेश्वरानन्दजी

[प्रस्तुत लेख, रामकृष्ण मिशन, नयी दिल्ली द्वारा प्रकाशित 'Sri Ma Sardadevi-the Great Wonder' से साभार गृहीत तथा अनूदित हुआ है । अनुवादक हैं, रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची के स्वामी निखिलेश्वरानन्दजी महाराज – सं०]

सन् १९१६ के ग्रीष्मकाल के मध्य में, मैं पहली बार बेलुड़-मठ आया था—श्रीमाँ सारदादेवी से मिलने के लिए। जाने के पहले वहाँ दो महीनों के लिए रहा था। जहाँ तक स्मरण होता है, मैं जून के महीने में जयरामबाटी गया था। स्वामी प्रेमानन्दजी महाराज ने मुझे एक भक्त से परिचय करा दिया जो वहाँ जा रहे थे। उन्होंने श्रीमाँ सारदादेवी को एक पत्र दिया और हमदोनों जयरामबाटी के लिए रवाना हो गये। हमलोग हावड़ा मैदान मार्टिन कम्पनी रेलवे स्टेशन गये और वहाँ से रेलगाड़ी द्वारा चाँपाडांगा चले गये। मैं ठीक दूरी नहीं जानता था। जो हो, हमलोग ३ से ३॥ बजे रवाना होकर रात को लगभग ८॥ बजे चाँपाडांगा पहुँचे। मार्टिन कम्पनी रेल की गति बहुत धीमी थी, 'ट्रामकार' के समान—बल्कि उससे भी धीमी। दो और युवकों ने उसी रेलगाड़ी से यात्रा की तथा वे हमसे चंपाडांगा में मिले। हम सभी ने चाँपाडांगा रेलवे स्टेशन पर, जो कि एक अर्धढँका कमरा मात्र था, रात बितायी। दूसरे दिन हमलोग वहाँ से जयरामबाटी के लिए रवाना हुए। कुछ दूर जाने के बाद, हमारे कलकत्ता वाले मित्रों में से एक बीमार पड़ गया। उसे पेचिश की शिकायत हुई, अतः कलकत्ता वाले मित्र ने उसके लिए बैलगाड़ी की व्यवस्था कर दी। रोग बढ़ने के कारण दोनों कलकत्ता लौट गये। इन दोनों मित्रों ने बाद में रामकृष्ण संघ में प्रवेश लिया और संन्यासी बने। जो बीमार पड़े थे, वे थे स्वामी सत्यप्रकाशानन्द जो दीर्घ वर्षों तक अमेरिका में सेंट लुई केन्द्र के प्रभारी थे और अन्य थे शरदेन्दु महाराज, स्वामी विश्वनाथानन्दजी, जो दिल्ली आश्रम में प्रारंभ के दिनों में कई वर्षों तक थे। वे अच्छे संगीतज्ञ थे। दोनों ने अपना शरीर त्याग दिया है। हमदोनों ने (जो बेलुड़ मठ से आये थे—मैं और वह भक्त) श्रीमाँ के घर की यात्रा जारी की। मैं ठीक-ठीक दूरी नहीं जानता हूँ, क्योंकि जयरामबाटी के लिए हमलोग रवाना हुए तब काफी देर हो चुकी थी। हमारे दो अन्य साथियों में से एक की अस्वस्थता के कारण इन दोनों को कलकत्ता लौट जाना पड़ा था, और उसी के कारण हमारी यात्रा भी देर से प्रारम्भ हुई। जब हमलोग आरामबाग में नदी-तट पर पहुँचे तब रात हो चुकी थी और हमलोग कामारपुकुर के लिए अग्रसर नहीं हो सके। हमलोगों ने नदी-तट पर ही रात बितायी। ग्रीष्म-काल होने पर भी रात में काफी ठण्ड थी और कुछ अन्य लोग भी हमारे साथ थे—बैलगाड़ियों के साथ उनके चालक भी। भोर होते ही हमलोग पहुँचे तब सबसे पहले शिबुदादा से भेंट हुई। वे उस समय हुक्का पी रहे थे। हमलोगों को स्वागत-कक्ष में बैठाया गया। फिर वे भीतर गये तथा हमारे भोजन की व्यवस्था की। दोपहर के भोजन के बाद कुछ विश्राम कर हमलोग जयरामबाटी के लिए रवाना हुए। जब हमलोग जयरामबाटी पहुँचे तब सायंकाल ४ या ४॥ बजे का समय होगा। हमलोगों को श्रीमाँ के दर्शन के लिए ले जाया गया। हमलोग श्रीमाँ के वर्त्तमान के नये मकान के एक कमरे में ठहरे, जो बाद में मकान

के बाहर का बैठक खाना बना। उस समय वह मकान निर्माणाधीन था। जब हमलोगों को श्रीमाँ के पास ले जाया गया उस समय वे अपने पुराने मकान में बैठी थीं। उस समय उनके पास और कोई नहीं था, शायद महिलाएँ सभी चली गयी थीं, क्योंकि पुरुष लोग आ रहे थे। श्रीमाँ बरामदे में बैठकर रात के भोजन के लिए तरकारी काट रही थीं। भक्त ने उन्हें स्वामी प्रेमानन्दजी के पत्र के बारे में बताया। उन्होंने एक ब्रह्मचारी से पत्र पढ़कर सुनाने के लिए कहा। पत्र उन्हें पढ़कर सुनाया गया। तब उन्होंने कहा "ठीक है, उनलोगों की दीक्षा कल होगी।" हमलोग अपने कमरे में लौट आये।

दूसरे दिन हमलोग दीक्षा के लिए तैयार थे। श्रीमाँ ने श्रीठाकुर की प्रातःकालीन पूजा करने के बाद हमलोगों को एक-एक करके बुलबाया और हमारी दीक्षा हो गयी। साधारणतः वे ठाकुर-पूजा के बाद ही दीक्षा देती थीं। किन्तु उनका इसके सम्बन्ध में कठोर नियमादि कभी नहीं था। उन्होंने किसी भी अवस्था में दीक्षा दी थी। याद होगा कि उन्होंने एक कुली को विष्णुपुर रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म पर ही दीक्षा दी थी। उन्होंने उसे बुलाया। आसन के तौर पर तीन घास के तिनके रक्खे और उसे उसपर बैठने को कहा। फिर उन्होंने उसे दीक्षा दे दी। एक और महिला जो उन्हें बचपन से जानती थी—उनकी सहेली थी, एकबार उन्हें देखने गयी। दोपहर के भोजन के बाद दोनों श्रीमाँ के कमरे में एकसाथ सो रही थीं, जब श्रीमाँ ने उसे दीक्षा दे दी। यह दर्शाता है कि उनका दीक्षा के विषय में कोई विशेष नियम नहीं था। उन्होंने कभी किसी को नकारा नहीं। जो भी उनके पास आया, उसे दीक्षा मिली। वे कहती थीं—"श्रीरामकृष्णदेव ने तो श्रेष्ठ लोगों को चुन लिया है और मेरे लिए सब रद्दी माल छोड़ दिया है और उसके लिए मुझे इतना सहन करना पड़ रहा है।" किन्तु फिर भी उन्होंने कभी किसी को दीक्षा देने से इन्कार नहीं किया। उन दिनों देश में राजनैतिक अराजकतावादी आंदोलन पूरे जोर में था। जो युवक इस आन्दोलन में भाग ले रहे थे वे श्रीमाँ के पास अपनी श्रद्धा निवेदन करने तथा उनसे दीक्षा प्राप्त करने के लिए आते थे। पुलिस अवश्य उनपर कड़ी नजर रखती थी। श्रीमाँ का घर सी० आई० डी० पुलिस की निगरानी में था, किन्तु श्रीमाँ ने कभी इसकी परवाह नहीं की। एकबार दो युवक आये। वे लोग अराजकतावादी थे। श्रीमाँ ने उन्हें स्नान करने को कहा और बाद में उन्हें दीक्षा दी। उन दोनों को खिलाने के बाद श्री माँ ने उन्हें वहाँ से चले जाने को कहा। इस प्रकार वे दीक्षा देती थीं। अन्तिम क्षण तक उन्होंने दीक्षा देना बन्द नहीं किया। जब वे उद्बोधन-भवन में गंभीर रूप से बीमार थीं, एक दिन एक पारसी युवक जो बेलुड़-मठ में अतिथि था, उनका दर्शन करने के लिए तथा उनके पास दीक्षा लेने के लिए आया। उस समय किसी को श्रीमाँ के पास जाने की अनुमति नहीं थी, क्योंकि वे गंभीर रूप से बीमार थीं। उस युवक को उनके दर्शन के लिए ऊपर जाने नहीं दिया गया था और वह नीचे ही बैठा था। किन्तु श्री माँ ने उस युवक के आने की बात को ताड़ लिया और किसी को उसे अपने पास ले आने को कहा। वह श्रीमाँ से दीक्षा प्राप्तकर नीचे उतर आया। जब स्वामी सारदानन्दजी को इस बात का पता चला तो उन्होंने कहा: "यदि श्री माँ एक पारसी भक्त को पाना चाहती हैं, तो मैं क्या कह सकता हूँ? वह युवक और कोई नहीं, बम्बई के सुप्रसिद्ध फिल्मी कलाकार तथा निर्माता श्री सोहराब मोदी थे। इस प्रकार श्रीमाँ, अन्त तक किसी को भी दीक्षा देने में कभी हिचकिचाती नहीं थीं।

एक बात और श्रीमाँ में मैंने देखी। बाहरी तौर पर, उनके रूप-रंग में विशेष कुछ ऐसा नहीं था, जिससे हमलोग समझ सकते कि वे ही श्रीमाँ हैं। वे गाँव की एक सामान्य महिला के समान दिखती थीं। जब वे बहुत महिलाओं के साथ रहतीं, तब यह समझना कठिन था कि वे ही श्रीमाँ हैं। गिरीश बाबू ने कहा था, "कौन कह सकता था कि गाँव की अन्य घरेलू स्त्रियों की भाँति हमारे सामने खड़ी हुई महिला संसार की

राजराजेश्वरी हैं''। स्वामी सारदानन्दजी ने एक बार कहा था—श्रीरामकृष्ण में अन्तर की भावनाओं का कुछ बाह्य प्रकाश था, श्रीमाँ में कुछ भी नहीं। उनका अत्यधिक नियन्त्रण था और बाह्य चिन्ह कुछ भी नहीं था। उन्होंने अपने आप पर मानो एक मोटा पर्दा डाल रखा था, अतः कोई भी उनकी झलक नहीं पा सकता था। मद्रास में जब लोगों ने सुना कि श्रीमाँ आ रही हैं, तब उन्होंने स्वामी रामकृष्णानन्दजी से जाकर पूछा कि श्रीमाँ क्या व्याख्यान देंगी? स्वामी रामकृष्णानन्दजी ने नकारात्मक उत्तर दिया।

लोगों के प्रति उनके स्नेह के बारे में सोचिए। कोई इसे भूल नहीं सकता था। श्रीमाँ के घर एक महिला तरकारी काटने आया करती थी। श्रीमाँ के शरीर-त्याग के बाद भी वह कभी-कभी आया करती थी, कुछ देर रहकर चली जाती थी। उसे पूछा गया, "तुम अब भी क्यों यहाँ आती हो?" उसने उत्तर दिया "श्रीमाँ इतनी दयालु थीं कि मैं उन्हें भूल नहीं सकती। अतः मैं यहाँ आती हूँ, कुछ देर रहती हूँ, इससे मुझे बहुत आनन्द आता है।"

प्रथम विश्वयुद्ध के समय स्पिरिट नहीं मिलता था, क्योंकि वह युद्ध के काम में आता था। छः आना प्रति बोतल के भाव से जो मिलता था वह अब बाजार में मिलना ही बन्द हो गया। तब भी एक भक्त ने जयरामबाटी औषधालय के लिए कुछ बोतल किसी प्रकार प्राप्त कर ली। श्रीमाँ के जोड़ों में दर्द था। वात का दर्द—और स्पिरिट लगाने से उनका दर्द कुछ कम होता था। जब उन्हें इसे लगाने के लिए कहा गया तब उन्होंने कहा, "स्पिरिट लाया गया है गरीबों के लिए, और मैं अपनी व्यथा कम करने के लिए उन्हें वंचित नहीं कर सकती।" गरीबों के लिए इस प्रकार अनुभव करती थीं। एक अन्य समय एक भक्त ने आकर उन्हें कहा, "माँ अमुक ने अपने वसीयतनामे में बेलुड़ मठ के नाम बहुत सारी चीजें दानस्वरूप लिख दी है।" श्रीमाँ उसकी बात पूरी होने तक चुप रहीं। फिर उन्होंने कहा, "अच्छा, उसने यह सब किया है वह तो मैं समझी किन्तु गरीबों और पीड़ितों के लिए भी उसने कुछ छोड़ा है?" इसका कोई उत्तर नहीं था, क्योंकि उनलोगों के लिए कुछ भी नहीं रखा गया था। इस प्रकार श्रीमाँ गरीबों एवं पीड़ितों के लिए अनुभव करती थीं। स्वामी विवेकानन्दजी ने भी यह घोषणा की कि हमलोगों की गरीबों, पीड़ितों एवं पिछड़े-वर्ग के लोगों की उपेक्षा ही विदेशी साम्राज्य का कारण रही है। जनता की उपेक्षा के कारण ही हमलोगों को एक हजार वर्षों तक विदेशी साम्राज्य का दुःख भोगना पड़ा था। इसलिए श्रीमाँ ने सिखाया कि हमारा प्रथम कार्य गरीबों एवं पीड़ितों के उत्थान का होना चाहिए। स्वामी विवेकानन्दजी ने चेतावनी दी है कि हमें यह आदर्श कदापि नहीं भूलना चाहिए।

श्रीमाँ की माँ श्यामासुन्दरी देवी ने एक बार श्रीमाँ से पूछा, "वह कौन-सी देवी है, जो एक पैर दूसरे पर रखकर बैठती है?" श्रीमाँ ने कहा 'जगद्धात्री'। श्यामासुन्दरी देवी ने कहा, "मैं उनकी पूजा करना चाहती हूँ।' उन्होंने उनकी दो वर्षों तक पूजा की। जब वे तीसरी बार भी पूजा करना चाहती थीं, श्रीमाँ ने आपत्ति करते हुए कहा, "मैं इन सब कष्टों के लिए तैयार नहीं हूँ।" अन्त में वे राजी हुईं तथा पूजा सम्पन्न हुई। किन्तु निर्णय देर से हुआ था, और वर्षा प्रारम्भ हो चुकी थी। उन्होंने हमारे स्वामीजियों में से एक स्वामी शान्तानन्दजी को कहा था, "उस समय वर्षा के कारण पूजा के लिए आवश्यक सामग्री सुखायी नहीं जा सकी। किन्तु सौभाग्य से चारों ओर वर्षा थी, किन्तु हमारे आंगन में धूप थी। यह मानो एक चमत्कार जैसा था, किन्तु सचमुच में यह घटा।"

एक अन्य अवसर पर मैंने स्वयं देखा है कि क्या हुआ। श्रीमाँ के शरीर त्याग के बाद, उन्हें बेलुड़ मठ लाया गया और उनका अंतिम संस्कार उस स्थान पर किया गया जहाँ उनका मंदिर अवस्थित है। उस समय वहाँ कोई घाट नहीं था किन्तु नदी तक ढालू जमीन थी। उनका अन्तिम संस्कार वहाँ किया गया था। चिता जलायी गयी और आग जल रही थी। नदी के उस

पार जोरों की वर्षा हो रही थी, इतनी अधिक कि हमलोग उस पार के घर आदि कुछ भी देख नहीं पा रहे थे। वर्षा नदी के मध्य भाग तक आ गयी थी। नदी के इस पार बेलुड़ मठ में कोई वर्षा नहीं थी। इस पार कड़ी धूप थी और आग ठीक से जल रही थी। कुछ समय बाद पूरा शरीर ठीक से जल गया। अब समय आ गया आग को बुझाने का। उस समय एक सज्जन थे वे तांत्रिक थे; वे चाहते थे— अग्नि को तांत्रिक विधि द्वारा बुझाना। किन्तु वे आवश्यक वस्तुएँ नहीं पा सके। वे बाजार गये थे, किन्तु लौट नहीं रहे थे। इधर काफी देर हो रही थी। स्वामी निर्मलानन्दजी विचलित हो गये। उन्होंने एक बड़ा घड़ा उठाया, नदी पर गए, घड़े में जल भरा एवं शरत् महाराज को देते हुए कहा—"अग्नि बुझाने के लिए जल उँड़ेल दीजिए।" शरत् महाराज ने जल उड़ेल दिया। बहुत लोग नदी से जल-लेकर आये थे किन्तु कोई जल नहीं ढाल सका क्योंकि ज्यों ही शरत् महाराज ने जल ढाला, वर्षा उस तट से इस पार भी आ गयी। वह इतनी जोरों की वर्षा थी कि तुरन्त ही आग बुझ गयी और शरत् महाराज के बाद कोई भी जल नहीं ढाल सका। हमलोग सभी भींग गये। ऐसी घटनाएँ सचमुच में घटीं। यद्यपि ये आश्चर्यजनक एवं चमत्कारपूर्ण लग सकती हैं।

आगे दो देशभक्त युवकों के बारे में कहा गया था, जो दीक्षा के लिए आये थे एवं चले गये थे। उनमें से एक ने श्रीमाँ से पूछा, "हमें स्वाधीनता कब मिलेगी?" श्रीमाँ ने स्पष्ट उत्तर दिया। तुमलोग उनलोगों को 'भगा सकोगे नहीं, तुम ऐसा नहीं कर सकते। किन्तु तुम्हें स्वाधीनता मिलेगी, जब वे लोग आपस में लड़ने लगेंगे।" तो इतिहास ने बता दिया है कि बहुत वर्षों पूर्व वे जैसा सोचती थीं, वैसा ही हुआ है।

अंत में कुछ बातें और। जब भक्तगण शिकायत करते, "हमलोग कुछ नहीं पा रहे हैं, हमारी साधना नीरस है," तब वे उन्हें उत्तर देतीं—"तुम दिन में १०-१५ हजार बार मंत्र का जप करो और मैं देखूँगी तुम कुछ पाते हो कि नहीं।" ऋषि-मुनि लोगों को सत्य की उपलब्धि के लिए जन्म-जन्मान्तर तक कठोर तपस्या एवं साधना करनी पड़ी थी, और तुम उसे पाना चाहते हो—मुफ्त में - आसानी से। क्या संघर्ष के बिना यह संभव है? संघर्ष के द्वारा तुम जिसकी आकांक्षा करते हो, उसे पा सकते हो। प्रत्येक व्यक्ति आकर कहता है—'कृपा, कृपा।' कृपा क्या कर सकती है? कृपा आती है और चली जाती है। कृपा जिस व्यक्ति के पास गयी थी वह इसके लिए तैयार नहीं था।" किन्तु वे उत्साह देकर कहतीं, "चूँकि श्रीरामकृष्ण ने आकर हमारे लिए ईश्वरोपलब्धि करना बहुत सहज कर दिया है, जो भी व्यक्ति थोड़ी-सी भी साधना करेगा, ईश्वर को पायेगा।"

अन्त में उनका अन्तिम उपदेश : उन्होंने कहा था "कारो दोष देखो ना" 'किसी का दोष मत देखो' एक बात और उन्होंने कही थी—"जब भी तुम विपत्तियों में या चिन्ताओं में पड़े हो, याद रखना कि तुम्हारी एक माँ है।"

जब भी विपत्तियां आयें, हमलोग श्रीमाँ से प्रार्थना करें और वे हमें देखेंगी और हमारी चिन्ताएँ दूर होंगी। श्रीमाँ सभी पर कृपा करें यही मेरी उनसे प्रार्थना है।

स्वामी अखण्डानन्दजी के संग में

स्वामी वीरेश्वरानन्द

(पूज्यपाद स्वामी वीरेश्वरानन्दजी रामकृष्ण संघ के दशम अध्यक्ष थे। उन्होंने रामकृष्ण मिशन आश्रम, सारगाछी में मार्च १९७२ में इस आश्रम के प्रतिष्ठाता स्वामी अखण्डानन्दजी के संस्मरण सुनाये थे। अखण्डानन्दजी भगवान् श्रीरामकृष्णदेव के संन्यासी शिष्यों में अन्यतम थे तथा भक्तों में गंगाधर महाराज के नाम से परिचित थे। इन संस्मरणों का बंगला से हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मठ, नागपुर के ब्रह्मचारी प्रज्ञाचैतन्य ने किया है। यह 'विवेक ज्योति' १९८५ अंक ४ से साभार गृहीत है)

गंगाधर महाराज का स्वभाव था बच्चों-जैसा। हमलोग उनके साथ खेल के साथियों के समान हिले-मिले थे। महापुरुषगण दूसरों के साथ मिलने पर उनके भीतर अपना भाव जगा दे सकते हैं। शुक और व्यासदेव की आख्यायिका से यह स्पष्ट समझा जा सकता है।

कहीं पर कुछ नवयुवतियाँ स्नान कर रही थीं। उसी समय युवा शुकदेव नग्नकाय उधर से होकर गुजरे। स्नानरत महिलाएँ उन्हें देखने के लिए जल से निकलकर रास्ते के किनारे खड़ी हो गयीं। उनलोगों को तनिक भी संकोच न हुआ। कुछ ही क्षणों के बाद उनके पिता व्यासदेव भी उधर आये। दूर से ही उन्हें देख, लज्जित हो युवतियों ने वस्त्रादि पहन लिये। निकट पहुँचकर व्यासदेव ने उनसे पूछा, "मेरे युवा पुत्र को देखकर तुमलोगों को संकोच नहीं हुआ और मुझ बृद्ध को देखकर तुमलोग इतनी लज्जित क्यों हुई?' तरुणियों ने कहा, "आपके पुत्र में देह-भान नहीं है, अतः हमारा भी देह-ज्ञान विस्मृत हो गया था, पर आप में देह-बोध है, इसीलिए हम इतनी लज्जित हुई हैं।"

श्रीमाँ सारदादेवी एक बार जब जयरामबाटी से आ रही थीं तो रास्ते में डाकू के हाथ पड़ गयी थीं। माँ ने इतने भावपूर्वक उसे 'बाबा' कहकर पुकारा कि उस डाकू के अन्तर में तुरन्त पितृस्नेह उमड़ पड़ा। इसी प्रकार महापुरुष दूसरों के अन्दर अपने भाव का संचार कर दिया करते हैं।

एकबार गंगाधर महाराज उद्बोधन कार्यालय में आये हुए थे। सभी ने उनसे अनुरोध किया—"महाराज, हमलोगों को रसगुल्ले खिलाइए न!" "मेरे पास पैसे कहाँ है? कहाँ से मैं तुमलोगों को रसगुल्ले खिलाऊँ" तब उनमें से एक ने उनकी टेंट में रुपया बंधा देख उसे छुआ। इसपर उन्होंने उस लड़के को पकड़ लिया और बगल के कमरे में शरत् महाराज (स्वामी सारदानन्दजी) के पास ले जाकर बोले, ''देखो, कैसे लड़कों का निर्माण किया है तुमने? ये जबरदस्ती मुझसे रसगुल्ले खाना चाहते हैं।' उत्तर में शरत् महाराज बोले, "वे अगर खाना चाहते हैं, तो खिला दो न!" तब गंगाधर महाराज ने कहा "वाह! देखता हूँ तुम भी उन्हीं की बातों का समर्थन करने लगे।" असल में वे रुपये लाये थे लड़कों को मिठाइयाँ खिलाने के लिए ही। हमलोगों

के साथ नोंक-झोंक करने के लिए ही उन्होंने ऐसा किया था। हमलोगों के ऐसे आचरण से वे बहुत आनन्दित हुए थे।

मैं दो-एक घटनाओं का उल्लेख करूँगा, यह दिखाने के लिए कि स्वामी विवेकानन्दजी के प्रति उनकी कितनी श्रद्धा और भक्ति थी। उन दिनों मैं अद्वैत आश्रम में रहा करता था। एक बार गंगाधर महाराज कुछ दिनों के लिए कलकत्ते आये और पुँटिया की रानी, जिनके पौत्रगण शरत् महाराज के शिष्य थे, के मकान में ठहरे हुए थे। एक भक्त अद्वैत आश्रम में दो-एक दिन रहने के लिए आये हुए थे। उन्होंने थोड़े पैसे खर्च कर मध्याह्न-भोजन के समय साधुओं को खिलाने के लिए रसगुल्ले और कच्चे नारियल मँगाये। हमलोगों का भोजन खत्म होने के पहले ही 'उद्बोधन कार्यालय' के एक संन्यासी आ पहुँचे। उन्हें भी मिठाई और नारियल दिये गये। बाद में उन्होंने गंगाधर महाराज से कहा, "महाराज! आज अद्वैत आश्रम में बहुत बड़ा भण्डारा हुआ। रसगुल्लों की भरमार थी और कच्चे नारियलों का तो कहना ही क्या?" फिर बोले, "अद्वैत आश्रम में इतना बड़ा भण्डारा हुआ, और आप यहीं रहे, आपको उनलोगों ने निमंत्रण तक नहीं दिया?" सुनकर वे बालक के समान बोले, "अच्छा! मैं यहीं हूँ, और प्रभु (वीरेश्वरानन्दजी का पूर्व नाम) ने मुझे निमन्त्रण नहीं भेजा? ठहरो, आने तो दो उसे!" उक्त संन्यासी ने लौटकर मुझसे कहा, "मैंने महाराज को तुम्हारे खिलाफ खूब भड़काया है। इस बार जाने पर मजा चखोगे।"

कुछ ही दिनों बाद मैं गंगाधर महाराज से मिलने को गया। प्रणाम करने के बाद ज्योंही मैं उनके चरणों में बैठा, पुँटिया रानी के पौत्रगण और दो एक संन्यासी भी जो उस समय वहाँ उपस्थित थे, उत्सुकतापूर्वक आकर मेरे पास बैठ गए। इनमें वे संन्यासी भी थे, जिन्होंने मेरे विरुद्ध शिकायत की थी।

गंगाधर महाराज मौन धारणकर गम्भीरतापूर्वक बैठे रहे। मैं भी चुपचाप बैठा रहा।

कुछ क्षणों के बाद, अपनी तर्जनी से मेरी ओर इंगित करते हुए वे गम्भीर स्वर में बोले, "तुम्हारे खिलाफ मुझे कुछ कहना है।"

मैंने कहा, "मुझे भी आपके खिलाफ कुछ कहना है।"

गंगाधर महाराज—"तुम्हें क्या कहना है मेरे खिलाफ?"

मैं—"पहले आपको जो कहना है, कह डालिए। आपका चार्जशीट देखने के बाद मुझे जो कुछ कहना है, कहूँगा।"

इस पर वे बच्चों के समान बोले, 'तो फिर निर्णायक ठीक कर लो।"

मैं—"आप ही निर्णायक होंगे।"

गंगाधर महाराज—मैं स्वयं ही शिकायत करके स्वयं ही निर्णायक होऊँगा?"

मैं—"आपके अतिरिक्त इनमें से किसी के भी ऊपर मेरा विश्वास नहीं है।"

गंगाधर महाराज—"ठीक है, तो फिर ऐसा ही होगा।"

इसके बाद वे बोले, "तुम्हारे यहाँ इतना बड़ा भण्डारा हुआ, मैं, मैं यहीं हूँ, और तुमने मुझे बुलाया तक नहीं!"

तब मैंने उनको सब कुछ स्पष्ट रूप से बतला दिया कि भण्डारे-जैसी कोई बात नहीं हुई और अन्त में बोला, "इन संन्यासी ने मेरे विरुद्ध जो कुछ कहा है, उसकी जाँच किये बिना ही आपने मेरे प्रति क्षोभ प्रकट किया है। स्वामीजी ने कहा है कि अगर किसी ने कोई गलती की है, तो उसी को बुलाकर कहना, दूसरों से कुछ भी न कहना। पर आपने ऐसा नहीं किया।"

ज्यों ही मैंने स्वामीजी की बात कही, वे तुरंत ही बोल पड़े, "तुमने ठीक ही कहा है। भूल मेरी है।" ऐसा कह उन संन्यासी, जिन्होंने शिकायत की थी, को

ओर इंगित करते हुए वे बोले, "इसी ने सब गड़बड़ी की है।" सभी हँसने लगे।

इस घटना में दो बातें महत्वपूर्ण हैं। पहली तो है स्वामीजी के प्रति उनकी गहरी श्रद्धा और दूसरी है उनके भीतर महापुरुष के लक्षण—मुझ जैसे व्यक्ति के सामने अपनी गलती मान लेना। हमलोग तो ऐसा नहीं कर पाते।

तब मैं बोला, "महाराज, मैं मुकदमा जीत गया हूँ, अतः आपसे क्षतिपूर्ति लूँगा।"

गंगाधर महाराज—"ठीक है, क्या चाहते हो, बोलो?"

मैं—"आपको एक दिन अद्वैत आश्रम में आना होगा। वहाँ दोपहर का भोजन कर विश्राम करना होगा। फिर शाम को चार बजे चाय पीकर सन्ध्या के पूर्व लौट आना होगा।"

गंगाधर महाराज—"ठीक है, ऐसा ही होगा।"

बाद में एक दिन वे आये। पर दोपहर में भोजन के बाद ही बोले, "अब जाऊँगा।" गरमी के दिन थे। उन दिनों आजकल के समान टैक्सियाँ नहीं थीं। वेलिंगटन लेन से श्यामबाजार तक उन्हें घोड़ागाड़ी में जाना था। धूप में उन्हें जाने में कष्ट होगा, ऐसा सोचकर मैं बोला, "यह तय हुआ था कि आप अपराह्न में चाय पीकर, सन्ध्या के समय लौटेंगे। अतः अभी आपका जाना न होगा।" गंगाधर महाराज बोले, "नहीं, नहीं, अभी जाऊँगा।" तब उन्हें अटकाने के उद्देश्य से मैंने कहा, "यदि आप ठहर जायँ, तो आपको एक नयी चीज पिलाऊँगा, ऐसी चीज जो आपने जीवन में कभी भी न पी हो।"

गंगाधर महाराज—"क्या नयी चीज पिलाओगे तुम मुझे? अरे, मैं कितने ही राजाओं और धनिकों के साथ रहा हूँ, कितने देश घूम चुका हूँ, कितनी ही तरह की चीजें खायी-पी हैं। तू कौन-सी नयी चीज मुझे पिलाएगा?"

मैं—"आप जो भी कहें, पर मैं एक ऐसी चीज आपको दूँगा, जो आपने पहले कभी भी न पी हो?"

गंगाधर महाराज—"अच्छी बात है, देखूँ, तुम क्या पिलाते हो मुझे! तो फिर ठहर ही जाता हूँ।"

मैं आश्वस्त हुआ—जैसे भी हो, इस भयंकर गरमी में उनका जाना तो स्थगित हुआ!

चार बजते ही उन्होंने मुझे बुलाकर कहा, "क्यों, कौन-सी नयी चीज पिलाने को कहा था, ले आओ।"

दोपहर में उनके सोने के बाद ही मैंने कॉफी बनाकर उसे ठण्डा करने के लिए बरफ में रख दिया था। उन दिनों कलकत्ते में न कॉफी हाउस थे न रेफ्रिजरेटर। मैंने वही ठण्डी कॉफी गिलास में भरकर उन्हें दी। पीकर वे बहुत प्रसन्न हुए और बोले, "सचमुच ऐसी चीज पहले कभी भी नहीं पी है।"

एक और घटना है। सारगाछी से कलकत्ता आकर गंगाधर महाराज एक भक्त के घर पर ठहरे हुए थे। उनलोगों ने एक कमरे को खूब यत्न से अच्छी-अच्छी चीजों से सजाकर उनके रहने की व्यवस्था की थी। हमलोग उनसे मिलने वहाँ गये। वे बच्चे की तरह बोले, 'देखो, इनलोगों ने यहाँ मुझे कितने यत्न के साथ रक्खा है। तुम लोग क्या मठ में मुझे इस प्रकार रख सकोगे?"

मैं बोला, "इस मकान के साथ मठ की क्या तुलना? यह एक धनी आदमी का मकान है और मठ है फकीरों की जगह। वहाँ पर भला हमलोग आपको इस प्रकार रख पाएँगे? फिर भी एक बात है—मठ है स्वामीजी का घर, स्वामीजी खुद वहाँ रहा करते थे।"

यह कहते ही वह बोल पड़े, "ठीक कहते हो तुम। कल सुबह ही मठ को जाऊँगा।" और उन भक्त को बुलाकर कहा, "कल सबेरे मठ में जाने की व्यवस्था करो।"

हम सब अवाक् रह गये । वे भक्त बारम्बार उनसे और भी दो-एक दिन रह जाने का अनुरोध करने लगे, हमलोगों ने भी उनका समर्थन किया, पर उन्होंने एक न सुनी। दूसरे दिन सबेरे ही वे मठ में चले आये ।

बंगला और संस्कृत भाषा के प्रति उनका बहुत ही प्रेम था । बंगला बोलते समय बीच-बीच में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग उन्हें पसन्द न था । अद्वैत आश्रम का प्रकाशन-विभाग उन दिनों कॉलेज स्ट्रीट मार्केट की दूसरी मंजिल के एक कमरे में अवस्थित था । एक दिन वे वहाँ आकर बोले, "चलो, खादी भंडार देखने जाएँगे ।" खादी भंडार उन दिनों अल्बर्ट-हॉल में नीचे की मंजिल के एक कमरे में था । मैं उनके साथ गया । घूम-घामकर उन्होंने सब कुछ देखा। सर पी० सी० राय भी उस समय वहीं उपस्थित थे । वे उनदिनों कांग्रेस की ओर से खादी का प्रचार कर रहे थे । खादी-कर्मचारियों के साथ बातचीत करते समय वे बीच-बीच में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग कर रहे थे । गंगाधर महाराज खादी भण्डार की चीजें देखते हुए डा० राय की बातें भी सुन रहे थे । कुछ देर तक सुनने के बाद वे डा० राय से अत्यन्त विनयपूर्वक बोले, "राय साहब, आप अपनी भाषा को भी थोड़ी खद्दर की बना डालिए ।" डा० राय यह सुनकर नाराज नहीं हुए, वरन् खूब विनय-पूर्वक बोले, "स्वामीजी, आपने ठीक ही कहा है, पर क्या करूँ, लड़कों को अंग्रेजी पढ़ाते-पढ़ाते बीच-बीच में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करने की आदत हो गयी है ।"

गंगाधर महाराज हमलोगों के साथ बच्चों की तरह मिला-जुला करते थे, इसीलिए हमलोग उनके खेल के साथियों के समान उनसे व्यवहार कर पाते थे । चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब जब जल में पड़ता है, तो मछलियाँ उस प्रतिबिम्बित चन्द्रमा के साथ खेलती हैं और सोचती हैं कि चन्द्रमा भी उन्हीं में से एक है । वे नहीं जानतीं कि चन्द्रमा का वास्तविक स्थान कहाँ है ! ★

भगवान् के प्रति किस प्रकार का आकर्षण होना चाहिए ? सती का पति की ओर, कृपण का धन की ओर तथा विषयी का विषय की ओर जो आकर्षण होता है, उन तीनों को एकत्र मिलाने पर जितना आकर्षण होता है उतना यदि भगवान् के प्रति हो तो उनका लाभ होता है ।

—श्री श्रीरामकृष्ण

एक शुभैषी द्वारा स्थान प्रदत्त

श्रीरामकृष्ण के पार्षदों के संग में
स्वामी वीरेश्वरानन्द

भगवान् श्रीरामकृष्णदेव के मानस-पुत्र स्वामी ब्रह्मानन्दजी ने पूजनीय वीरेश्वरानन्दजी महाराज (प्रभु महाराज) के बारे में कहा था, "प्रभु एक दिन सचमुच में प्रभु हो जायगा।" परवर्त्ती काल में इसका उल्लेख करने पर पू० महाराज कहते, "ये सब अजूल-फजूल की बातें कहाँ से सुन लीं ? मैंने कभी ऐसा कुछ नहीं सुना।" यद्यपि पू० महाराज इस प्रकार इस बात को टाल देते, ब्रह्मानन्दजी महाराज की कृपा से वे महानता के किस शिखर तक पहुँचे थे, यह सर्वविदित ही है।

श्रीमाँ सारदादेवी ने भी प्रथम मुलाकात में ही उनके संबंध में कहा था, "यह छोटा-सा लड़का बाद में बड़ा बनेगा।"

श्रीरामकृष्णदेव के कई पार्षदों के सान्निध्य में आने का मौका पूजनीय महाराज को मिला था। मद्रास से वे जब बेलुड़ मठ रामकृष्ण-संघ में प्रवेश लेने हेतु आये तब सबसे पहले ही उनको दर्शन मिला महापुरुष महाराज (श्रीरामकृष्णदेव के पार्षद् स्वामी शिवानन्द) का। श्रीरामकृष्णदेव के पार्षद् स्वामी प्रेमानन्दजी ने ही श्रीमाँ सारदादेवी के पास उन्हें मंत्र-दीक्षा लेने के लिये भेजा था, साथ में एक पत्र भी दिया था—माँ के नाम। बेलुड़ मठ में रहते समय उनका घनिष्ठ संपर्क महापुरुष महाराज तथा स्वामी प्रेमानन्द महाराज से हुआ था। दोनों ही उन्हें बहुत स्नेह करते थे। पू० महाराज (प्रभु महाराज) जब भी महापुरुष महाराज के पास जाते तब वे सूरदास का यह पद गाना प्रारंभ कर देते, "प्रभु मेरे अवगुण चित न धरो।"

एक दिन पू० महापुरुष महाराज बेलुड़ मठ में अपने कमरे के पास वाले बारामदे में बैठे हुए थे। सुबह का समय था। कुछ संन्यासी उन्हें प्रणाम करने आये। प्रभु महाराज भी उनमें से एक थे। पू० महापुरुष महाराज ने उनलोगों को स्तोत्रों की एक पुस्तक का पाठ करने को कहा। 'वीरेश्वर स्तोत्र' का पाठ होने लगा। उस स्तोत्र में भगवान् शिव के वीरेश्वर रूप का वर्णन सुनते ही पू० महापुरुष महाराज बोल उठे, "ठीक है। बिल्कुल ठीक है! बिल्कुल ऐसा ही देखा है।" प्रभु महाराज तथा अन्य संन्यासीगण कुछ समझ नहीं पाये। पू० महापुरुष महाराज ने तब इसका रहस्य बताते हुए कहा, "देखो, एकबार वाराहनगर मठ में मैं स्वामीजी के साथ सो रहा था एक ही मच्छरदानी के अन्दर, क्योंकि उस समय हमलोगों के पास एक ही मच्छरदानी उपलब्ध थी। अचानक रात को नींद टूट गयी तो देखकर आश्चर्यचकित रह गया कि स्वामीजी बिछौने पर नहीं हैं। उनके स्थान पर आठ छोटे-छोटे सुन्दर शिव विराजमान हैं। मैं अपनी आँखों पर विश्वास नहीं कर पाया। सुबह उठकर जब स्वामीजी को इसके बारे में पूछा तो उन्होंने हँसकर टाल दिया। अब मुझे समझ में आया कि मैंने वीरेश्वर शिव का दर्शन किया था।"

स्वामी प्रेमानन्दजी के बारे में बोलते समय पू० महाराज एक घटना का उल्लेख बहुधा किया करते थे। एकबार स्वामी प्रेमानन्दजी महाराज मालदा गये हुए थे। वहाँ भाषण देते समय उन्होंने 'शिवज्ञान से जीव-सेवा' करने पर जोर दिया। कई भक्तों ने बार-बार अनुरोध किया कि महाराज हमलोग तो कुछ प्रेम की बातें सुनना चाहते हैं। अंत में स्वामी प्रेमानन्दजी महाराज ने उत्तेजित होकर कहा, "तुमलोग क्या प्रेम

की बातें सुनने लायक हो ? तो सुनो एक कहानी। एक फेरीवाला रास्ते से जा रहा था और चिल्ला रहा था—'प्रेम चाहता है भाई कोई, प्रेम !' कई लोग इसे सुनकर दौड़े चले आये और फेरीवाले से कहा—"हाँ ! हाँ ! हम चाहते है प्रेम, कितना दाम होगा बोलो ?" फेरीवाले ने उत्तर दिया, "विशेष कुछ दाम नहीं है। अपना सिर काटकर देना होगा। तराजू में एकतरफ रहेगा सिर और दूसरी तरफ रहेगा प्रेम।" यह सुनकर सबलोग वापस चले गये।" स्वामी प्रेमानन्दजी महाराज ने यह कहानी सुनाकर श्रोताओं से कहा—"प्रेम की चर्चा करना सरल है, किन्तु बिना त्याग तथा वैराग्य के यह संभव नहीं।"

पू० वीरेश्वरानन्दजी महाराज के जीवन को गढ़ने में स्वामी ब्रह्मानन्दजी महाराज का विशेष योगदान था। एक बार पू० महाराज ब्रह्मानन्दजी महाराज के पास गये थे, कुछ समय तपस्या में बिताने की अनुमति लेने के लिए। ब्रह्मानन्दजी महाराज ने प्रेमपूर्वक उन्हें समझाते हुए कहा था, "तपस्या में क्यों जाना चाहते हो ? स्वामीजी के आदर्श के अनुसार यदि सेवा में अपना जीवन बिता दोगे तो तपस्या से अधिक फल प्राप्त करोगे।" उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर पू० महाराज ने अपना सारा जीवन सेवा में बिता दिया था। स्वामी ब्रह्मानन्द महाराज के पास से ही उन्हें ब्रह्मचर्य तथा संन्यास-दीक्षा मिली थी। संन्यास आश्रम के कई अन्य आदर्श जैसे पवित्रता, आज्ञाकारिता आदि का पाठ भी उन्हें ब्रह्मानन्दजी महाराज से मिला था। एक दिन बेलुड़ मठ में संध्या-आरती में जाने के पहले पू० महाराज गंगा में हाथ-पैर धोने के लिए गये। नदी से ऊपर आते ही देखा सामने बारामदे में स्वामी ब्रह्मानन्दजी बैठे हैं। उन्हें देखते ही स्वामी ब्रह्मानन्दजी ने उनसे कहा, "जरा गंगा में जाकर चखकर देखो तो गंगा का पानी अभी खारा है या नहीं ?" पू० महाराज ने उत्तर दिया, "मैंने अभी चखा है, पानी खारा नहीं है।" स्वामी ब्रह्मानन्दजी ने तब कहा, "मैंने तुम्हें कहा था, वहाँ जाकर चखकर आने के लिए।" तब पू० महाराज फिर से नदी में गये, पानी चखा, वापस लौटकर कहा, "मैं आपकी आज्ञानुसार वहाँ गया, पानी चखा और मुझे मीठा लगा।" यह उत्तर पाकर स्वामी ब्रह्मानन्दजी खुश हुए। परवर्ती-काल में इस घटना को सुनकर पू० महाराज साधु ब्रह्मचारी को कहते, "उस दिन मैंने राजा महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द) से आज्ञाकारिता का एक अमूल्य पाठ सीखा। गुरुजन जैसा कहते हैं उनका अक्षरशः पालन करना चाहिए।"

एक दिन स्वामी ब्रह्मानन्दजी ने पू० महाराज से कहा था, "देखो, तुम्हें आध्यात्मिक सफलता का रहस्य बताता हूँ। सब समय सभी अवस्था में भगवान के नाम का जप किया करो। मैं भी यही करता हूँ।" परवर्ती-काल में पू० महाराज साधु-ब्रह्मचारी को यह बात बताते हुए भगवान् के नाम का निरंतर जप करने के लिए सदैव प्रोत्साहित करते थे। वे स्वयं भी निरंतर जप करते थे।

पू० महाराज जब वाराणसी में थे तब एक बार स्वामी ब्रह्मानन्दजी का आगमन वहाँ हुआ था। १० फरवरी, १९२१ को स्वामी ब्रह्मानन्दजी की जन्म-तिथि के अवसर पर एक मजेदार घटना हुई, जिसका पू० महाराज ने इस प्रकार वर्णन किया है—"उस दिन राजा महाराज को उनके जन्म-दिन के अवसर पर फूलों की माला, फूलों का मुकुट इत्यादि पहनाकर सुन्दर ढंग से सजाया गया था। दूसरे दिन महाराज ने मजाक करने के इरादे से हमलोगों को कहा—"ये सब माला, मुकुट इत्यादि स्वामी शुद्धानन्दजी को पहनाकर उनके चारों ओर कीर्तन करो।" दूसरे दिन शुद्धानन्द महाराज आंगन में बैठे हुए थे, तब हमलोगों ने उन्हें अचानक माला-मुकुट इत्यादि पहनाना शुरू कर दिया। स्वामी शुद्धानन्दजी महाराज तो भौंचक्के रह गये। फिर हमलोगों ने उनके चारों ओर खोल-करताल लेकर कीर्तन करना तथा नाचना शुरू कर दिया। उसी समय

महाराज ऊपर से नीचे आ गये तथा यह सब देखकर हँसते-हँसते चले गये।

स्वामी तुरीयानन्दजी के साथ भी उनका मधुर सम्बन्ध था। वे जब वाराणसी सेवाश्रम में चिकित्सा के लिए रहते थे, उस समय प्रतिदिन स्वामी तुरीयानन्दजी महाराज के साथ उनकी मुलाकात होती थी। मुलाकात होते ही स्वामी तुरीयानन्दजी उनसे पूछते थे, "कैसे हो?" जिस दिन पू० महाराज वाराणसी सेवाश्रम से स्वस्थ होने पर वाराणसी अद्वैत-आश्रम चले गये, उस दिन मुलाकात होने पर स्वामी तुरीयानन्दजी ने उनसे विनोद करते हुए पूछा था, "कहाँ हो?" उसका कारण यह था कि किसी भी संन्यासी के स्वस्थ होने पर उसे तुरन्त सेवाश्रम त्यागकर अद्वैत-आश्रम चला जाना पड़ता था।

श्रीरामकृष्णदेव के कई अन्य पार्षदों—स्वामी सारदानन्दजी महाराज, अखण्डानन्दजी महाराज तथा स्वामी विज्ञानानन्दजी महाराज—से उनके मधुर सम्बन्ध थे। श्रीरामकृष्ण के पार्षदों के चरण-तलों में बैठकर उन्होंने संघ की परम्पराओं, संन्यास-जीवन के आदर्शों आदि के बारे में सीखा था तथा श्रीरामकृष्णदेव, श्रीमाँ सारदादेवी तथा स्वामी विवेकानन्द के बारे में कई ऐसी बातों को जाना था जो ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं हैं। उदाहरण के तौर पर स्वामी विज्ञानानन्दजी महाराज से स्वामी विवेकानन्द के बारे में जो घटना उन्होंने सुनी थी, उसका उल्लेख कर इस लेख का उपसंहार किया जाता है।

पू० महाराज ने कहा—"स्वामी विज्ञानानन्दजी महाराज बेलुड़ मठ में एक छोटे-से कमरे में रहते थे जो स्वामीजी के कमरे के ठीक सामने था। एक दिन रात को लगभग दो बजे उनकी नींद टूट गयी। देखा कि स्वामीजी बरामदे में चहलकदमी कर रहे हैं। उन्होंने अवाक् होकर स्वामीजी को जाकर पूछा, "स्वामीजी! क्या आपको नींद नहीं आ रही है?" स्वामीजी ने उत्तर दिया, "देखो पेशन! मैं बढ़िया सो रहा था। अचानक मेरे मन में मानो एक धक्का लगा। मेरी नींद टूट गयी। मुझे लगता है किसी जगह कोई दुर्घटना हुई है एवं कई लोग कष्ट पा रहे हैं।" विज्ञानानन्दजी महाराज ने हमलोगों को कहा, "स्वामीजी की यह बात सुनकर मैं सोचने लगा कहीं दुर्घटना हुई है और स्वामीजी की यहाँ नींद टूट गयी, ऐसा भी कहीं संभव है? ऐसा सोचकर मन-ही-मन कुछ हँसा। किन्तु क्या आश्चर्य! दूसरे दिन सुबह समाचार-पत्रों में पढ़ा कि ठीक उसी समय रात को फिजी के पास किसी द्वीप में भीषण भूकम्प हुआ है जिसमें हजारों लोग मर गये हैं तथा असंख्य लोग निराश्रय हो गये हैं। समाचार पढ़ते ही मैं अवाक् हो गया। तब समझा कि स्वामीजी का स्नायविक गठन (Norvous system) मनुष्यों के कष्टों के प्रति 'सिस्मोग्राफ' से भी कहीं अधिक संवेदनशील है। (More responsive to human miseries)।"

□

पहले मनुष्य बनो, काम-काज बाद में। यदि तुम पहले मनुष्य नहीं बन सकते, तो कोई भी काम सार्थक नहीं होगा। यदि तुम सीधे कर्म में लग जाओ, तो केवल आपस में झगड़ा करोगे, एक दूसरे को मारोगे और ऐसे ही सब मरते रहोगे। इसीलिए पहले मनुष्य बनने की चेष्टा करो, धार्मिक बनने का प्रयास करो।

—स्वामी वीरेश्वरानन्द

गरीबपरवर स्वामी वीरेश्वरानन्द

एक दिन श्रीमाँ सारदादेवी को उनके सेवक ने बतलाया कि 'अमुक व्यक्ति ने मरते समय अपनी सारी जायदाद बेलुड़ मठ के लिए अपने वसीयतनामे में लिख दी है। सेवक ने सोचा था, माँ यह सुनकर प्रसन्न होंगी। किन्तु, माँ ने गंभीर स्वर में कहा, "यह तो ठीक है; किन्तु, क्या गरीबों के लिए भी उसने कुछ छोड़ रखा है ?"

उपर्युक्त घटना से पू० स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज बहुत ही प्रभावित हुए थे तथा परवर्त्ती काल में वे इस घटना को बहुधा सुनाया करते थे। वे श्रीमाँ के मंत्र-शिष्य तो थे ही, किन्तु साथ ही, श्रीमाँ के अनेक गुण जैसे—गरीबों के प्रति प्रेम, धैर्य, सहनशीलता, पवित्रता, स्नेह आदि भी उन्हें विरासत में उनसे मिले थे। पू० महाराज से दीक्षित दिल्ली की एक महिला ने उनका संस्मरण सुनाते हुए कहा था कि वे दीक्षाप्रार्थी लोगों को प्रायः ही पूछते, "दीक्षा लेने तो आये हो, किन्तु गरीबों के लिए तुमने क्या कुछ किया है ?"

गरीबों एवं निम्नवर्ग के लोगों के लिए वे दिन-रात सोचते, उनके उत्थान की योजना बनाते, संन्यासी एवं गृही-भक्तों को उनकी सेवा के लिए बार-बार प्रोत्साहित करते। यह सब देखकर कुछ वरिष्ठ संन्यासी कभी-कभी उनसे मजाक में कहते, "अरे, तुम्हारी इतनी निम्न दृष्टि क्यों है ? जरा ऊपर भी देखो।" वे हँसकर उत्तर देते—"भाई, इस जन्म में तो यह नहीं छूटने का। निम्न-वर्ग के लोगों की सेवा के लिए ही यह जीवन अर्पित है।" वास्तव में स्वामी विवेकानन्द की पत्रावली को पढ़कर वे बहुत ही प्रभावित हुए थे तथा स्वामी विवेकानन्द ने जिस प्रकार "दरिद्र देवो भव ! मूर्ख देवो भव !" कहकर गरीबों में ही भगवान् का दर्शन कर उनकी सेवा करने का आह्वान किया था, इससे उन्हें बड़ी प्रेरणा मिली थी और इसने उनके जीवन को परिवर्तित कर दिया था।

एक दिन एक ब्रह्मचारी उन्हें प्रणाम करने आया। उन्होंने उसे बैठने को कहा तथा स्वयं उठकर एक पुस्तक ले आये। पुस्तक को उस ब्रह्मचारी के हाथ में थमाकर उन्होंने कहा—"जिस जगह चिह्न लगा हुआ है वहाँ से पढ़ना शुरू करो।" वह पुस्तक थी—Letters of Swami Vivekananda (पत्रावली)। उस ब्रह्मचारी ने निम्न-लिखित अंश का पाठ किया—

अलमोड़ा,
११ जुलाई, १८९७

प्रिय शुद्धानन्द,

अखण्डानन्द ने महुला में अद्भुत कार्य अवश्य किया है, किन्तु कार्य-प्रणाली ठीक प्रतीत नहीं होती। ऐसा मालूम हो रहा है कि वे लोग एक छोटे-से गाँव में ही अपना शक्तिक्षय कर रहे हैं, और वह भी एकमात्र चावल-वितरण के कार्य में। इस चावल-प्रदान की सहायता के साथ-ही-साथ किसी प्रकार का प्रचार कार्य भी हो रहा है—यह बात तो सुनने में नहीं आ रही है। लोगों को यदि आत्मनिर्भरशील बनने की भिक्षा नहीं दी जाय तो जगत् के सम्पूर्ण ऐश्वर्य पूर्णरूप से प्रदान करने पर भी भारत के एक छोटे-से-छोटे गाँव की भी सहायता नहीं की जा सकती है। शिक्षा प्रदान हमारा पहला कार्य होना चाहिए, चरित्र एवं बुद्धि दोनों के ही उत्कर्ष साधन के लिए शिक्षा-विस्तार आवश्यक है। मुझे इस बारे में तो कुछ भी समाचार नहीं मिल रहा है, केवल इतना ही सुन रहा हूँ कि इतने भिक्षुकों को सहायता दी गयी है। ब्रह्मानन्द से कहो कि विभिन्न जिलों में वे केन्द्र स्थापित करें, जिससे हम सामान्य पूँजी से यथा-संभव अधिक स्थलों में कार्य कर सकें। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि अबतक उन कार्यों से वास्तव में कुछ भी

नहीं हुआ है, क्योंकि अभी तक स्थानीय लोगों में किसी प्रकार की आकांक्षा जागृत करने में सफलता नहीं मिली है, जिससे कि लोकशिक्षा के लिए वे किसी प्रकार की सभा-समिति स्थापित कर सकें एवं उस शिक्षा के फलस्वरूप वे आत्मनिर्भरशील तथा मितव्ययी बन सकें। विवाह की ओर उनका अस्वाभाविक झुकाव दूर हो और इस प्रकार भविष्य में दुर्भिक्ष के कराल ग्रास से वे अपने को मुक्त कर सकें। दया के द्वारा लोगों के हृदय खुल जाते हैं; किन्तु उस द्वार से उनके सामूहिक हित साधन के लिए हमें प्रयास करना होगा।

सबसे सहज उपाय यह है कि हम छोटी-सी झोपड़ी लेकर गुरु महाराज का मंदिर स्थापित करें—गरीब लोग वहाँ एकत्रित हों, उनकी सहायता की जाय—वे लोग वहाँ पर पूजार्चन भी करें। प्रतिदिन सुबह-शाम वहाँ 'कथा' हो। उस कथा के सहारे से ही तुम अपनी इच्छानुसार जनता में शिक्षा-विस्तार कर सकते हो। क्रमशः उनलोगों में स्वतः ही उस विषय में विश्वास तथा आग्रह बढ़ेगा, तब वे स्वयं ही उस मंदिर के परिचालन का भार अपने ऊपर ले लेंगे और हो सकता है कि कुछ दिन बाद यह छोटा-सा मंदिर एक विराट् आश्रम में परिणत हो। जो लोग दुर्भिक्ष-निवारण-कार्य के लिए जा रहे हैं, वे सर्वप्रथम प्रत्येक ज़िले में एक मध्यवर्ती स्थल का निर्वाचन करें तथा वहाँ पर इस प्रकार की एक झोपड़ी लेकर मंदिर स्थापित करें, जहाँ से अपना कार्य भी थोड़ा बहुत प्रारंभ किया जा सके।

—विवेकानंद

पाठ खत्म होने पर पू० महाराज ने उस ब्रह्मचारी से कहा, "देखो, स्वामीजी क्या चाहते थे! ग्रामवासियों के लिए, निम्नवर्ग के लोगों के लिए, गरीबों के लिए कठोर परिश्रम करना होगा। उनके विचारों के अनुसार ही ग्रामीण-विकास का कार्य करना होगा। तुम राँची जाकर उस इलाके के आदिवासियों के बीच इन विचारों को कार्य में परिणत करने का प्रयत्न करना।" जब भी वह ब्रह्मचारी राँची से बेलुड़ मठ जाकर पू० महाराज से मिलता तब वे उससे विस्तृत जानकारी लेते कि ग्रामीण-विकास का कार्य किस प्रकार से चल रहा है। कितने लोगों को इससे ठीक-ठीक लाभ पहुँचा है। यहाँ तक कि वे यह भी जानना चाहते कि कितने ग्रामवासियों की, कितनी प्रतिशत आय बढ़ी है। एक बार जब उस ब्रह्मचारी ने पू० महाराज को मधु की एक बोतल भेंटस्वरूप प्रदान करते हुए कहा, "महाराज, यह मधु शुद्ध है। हमलोगों ने जिनको मधुमक्खी पालन में प्रशिक्षण दिया था, उन्होंने स्वयं इसे उत्पन्न किया है। पिछले वर्ष इन ग्रामवासियों ने मधु बेचकर लगभग ४५००० रु० की आय प्राप्त की है जो कि कृषि आदि कार्यों से प्राप्त आय से अतिरिक्त की आय है।" महाराज यह सुनकर अत्यंत प्रसन्न हुए। उस दिन रात को खाते समय अपने सेवक से प्रसन्नतापूर्वक उन्होंने कहा, "राँची का वह मधु लाओ तो। आज ही से उसे खाना प्रारम्भ करना पड़ेगा। तुम जानते हो कितने परिश्रम से उन गरीब आदिवासियों ने इसे उत्पन्न किया है! वहाँ हमारे आश्रम की सहायता से इसे बेच कर उन्होंने ४५००० रु० प्राप्त किये हैं। सचमुच गरीबों के विकास के लिए इसी प्रकार का काम करना चाहिए।"

पू० महाराज इन गरीबों को, निम्नवर्ग के लोगों को, इतना प्रेम करते थे कि जब राँची आश्रम द्वारा संचालित दिव्यायन-कृषि-विज्ञान-केन्द्र द्वारा प्रशिक्षित युवकों का एक दल बेलुड़ मठ देखने के लिए गया था, तब पू० महाराज ने उन लोगों के साथ अलग से विशेष रूप से बातचीत की, उन्हें ग्रामीण-विकास के लिए प्रोत्साहित किया तथा सेवकों से कहा, "उनलोगों को पैर छूकर प्रणाम करने दो।" (यद्यपि उस समय महाराज की अस्वस्थता के कारण किसी को भी पैर छूकर प्रणाम करने की अनुमति नहीं थी)

वास्तव में रामकृष्ण मिशन द्वारा संचालित ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों—'दिव्यायन', 'पल्लीमंगल', 'ग्रामश्री', 'लोकशिक्षा परिषद्' आदि के मूल प्रेरणास्रोत वे ही थे।

कुछ दिनों पूर्व पू० महाराज ने पल्लीमंगल द्वारा आयोजित 'नि:शुल्क नेत्र चिकित्सा शिविर' का उद्घाटन जयरामबाटी में किया था। उस समय उन्होंने ५९ लोगों के बीच अस्त्रोपचार के बाद चश्मों का वितरण किया तथा प्रत्येक के साथ वार्त्तालाप किया—तुम्हारा घर कहाँ है, परिवार में कितने लोग हैं, जीविकोपार्जन, किस प्रकार चलता है, इत्यादि की खोज ली। उस दिन उनके इस मधुर व्यवहार से गरीब लोग अभिभूत हो गये थे।

लोगों की दुर्दशा उनके प्राण को व्यथित कर डालती थी। १९७८ ई० में जब प० बंगाल में भयंकर बाढ़ आयी थी, उस समय असंख्य लोगों के दुःख से वे कितने विचलित हुए थे, इसका वर्णन करना संभव नहीं है। बेलुड़ मठ तथा अन्यान्य केन्द्रों के साधु-ब्रह्मचारियों को तत्काल राहत-कार्य में कूद पड़ने के लिए उन्होंने आह्वान किया तथा रामकृष्ण संघ के सभी केन्द्रों को उन्होंने यह निर्देश दिया कि उस वर्ष दुर्गापूजा सादे ढंग से मनायी जाय। राहत-कार्य के लिए बेलुड़ मठ में बड़े पैमाने पर खिचड़ी पकाना प्रारंभ किया गया ताकि पीड़ितों के बीच में उसका वितरण किया जा सके। किन्तु, एक समस्या आकर खड़ी हुई। प० बंगाल सरकार ने राहत-कार्य के लिए जो चावल देना स्वीकार किया था वह तब भी पहुँचा नहीं था। कुछ लोगों ने सलाह दी कि दुर्गापूजा के लिए अलग से रखे गये चावल का ही उपयोग इस कार्य में कर दिया जाय। किन्तु, कई लोगों ने आपत्ति की कि माँ की पूजा का चावल क्या इस प्रकार खर्च किया जा सकता है? पू० महाराज की सलाह जब इस सम्बन्ध में ली गयी तब उन्होंने कहा, "यह चावल ही राहत-कार्य में लगा दो।" उन्होंने यह भी कहा, "इस बार माँ की पूजा अत्यन्त सादे ढंग से की जायगी। इस बार बेलुड़ मठ में दुर्गापूजा के अवसर पर प्रसाद-वितरण नहीं होगा। इस बार माँ आर्त्त, पीड़ित एवं भूखे लोगों के मुख से ही भोग ग्रहण करेंगी।"

पिछले वर्ष (१९८४ ई० में) बिहार में जब भयंकर बाढ़ आयी थी, तब भी उनमें पीड़ितों के लिए यह व्यथा परिलक्षित की गयी थी। एकदिन एक संन्यासी उनके पास आये तथा उन्हें प्रणाम कर उनसे अनुमति लेनी चाही ताकि वे कुछ दिन तपस्या तथा तीर्थभ्रमण में बिता सकें। पू० महाराज ने नाराज होकर कहा, "बिहार में असंख्य लोग आज बाढ़ के कारण बेघर-बार के हो गये हैं; निराश्रय हो गये हैं; कितने दिनों से कितने लोग भूख से तड़प रहे हैं, और तुम्हें अभी तीर्थ-भ्रमण की इच्छा हुई है? जाओ! राहत-कार्य में लग जाओ।" पू० महाराज का गरीबों तथा पीड़ितों के प्रति यह प्रेम जीवन के अंतिम दिन तक अक्षुण्ण था। उनकी महासमाधि के दो-चार दिन पहले की बात है। वे गंभीर रूप से अस्वस्थ थे। कई दिनों से उन्होंने मुख से जल तक ग्रहण नहीं किया था। बहुत कष्ट पा रहे थे वे। करवट बदलने की सामर्थ्य भी उनमें नहीं थी। वे समझ गये थे कि अब शरीर नहीं रहेगा। संघ की कई गंभीर समस्याओं के बारे में वरिष्ठ संन्यासियों को अंतिम सलाह देना प्रारम्भ कर दिया। किन्तु उनका मन उस समय भी गरीबों के कल्याण में रत था। एक दिन उन्होंने सेवक को बुलाकर उनकी खाट के नीचे रखे हुए पीतल के बर्त्तनों को बाहर ले जाने को कहा तथा यह समझा दिया कि ये सब वस्तुएँ बेलुड़ मठ में काम करनेवाले माली के लड़के को अवश्य मिल जानी चाहिए। ये चीजें उन्होंने कई महीनों से संभालकर उसके लिए रखी थीं। इतने कष्ट के बीच भी उनका मन सदैव गरीबों के कल्याण में रत था। इसके तीन दिन बाद ही गरीबों की आशा का आलोक बुझ गया, किन्तु रख गये हैं वे हमारे लिए धरोहर के रूप में—गरीबों के प्रति यह दर्द, प्रेम तथा सेवापरायणता।

★

युवकों के स्वामी वीरेश्वरानन्द

पूज्य स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज युवा-वर्ग से विशेष स्नेह करते थे। बहुत आशा थी उन्हें युवा-वर्ग से। गत कुछ वर्षों से रामकृष्ण मठ एवं मिशन के विभिन्न केन्द्रों द्वारा आयोजित युवा-सम्मेलनों के मूल प्रेरणा-स्रोत वे ही थे। कई युवा-सम्मेलनों में उन्होंने स्वयं उपस्थित होकर युवक-युवतियों को आशीर्वाद दिया था तथा प्रोत्साहित किया था। सुदूर स्थानों में आयोजित युवा-सम्मेलनों के लिए उन्होंने अपनी शुभ-कामनाएँ भेजी थीं। वे सब समय युवा-वर्ग को यही बताते,—"देश की वर्त्तमान दुर्दशा से बचने के लिए स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रदर्शित पथ ही एकमात्र पथ है। अतः तुमलोगों को उनके पास जाना होगा। पथ खोजने के लिए अन्य स्थानों पर भटकना समय का दुरुपयोग ही होगा। भारतवर्ष को भारतीय आदर्शों के द्वारा ही उठाना होगा, जैसा कि स्वामी विवेकानन्द ने कहा है। तुमलोग विवेकानन्द-साहित्य को अच्छी तरह से पढ़ो तथा स्वामी विवेकानन्द के भावों तथा आदर्शों से परिचित होओ। जो विदेशी विचार-धाराएँ इस देश में घुसने का प्रयत्न कर रही हैं, उनके साथ स्वामी विवेकानन्द की विचारधाराओं की तुलना करो तथा हमारी मातृभूमि के पुनर्गठन के लिए सही पथ का निर्वाचन करो।"

संयुक्त राष्ट्रसंघ ने इस वर्ष को अंतर्राष्ट्रीय-युवा-वर्ष के रूप में मनाने का निर्णय लिया है। इस वर्ष से प्रतिवर्ष स्वामी विवेकानन्द के जन्मदिन १२ जनवरी को भारत सरकार ने युवा-दिवस के रूप में मनाने की घोषणा की है। इस समाचार को पाकर पू० महाराज बहुत ही आनंदित हुए थे। उनके निर्देशानुसार रामकृष्ण संघ के समस्त केन्द्रों को सूचना दे दी गयी कि 'राष्ट्रीय-युवा-दिवस' अच्छी तरह से मनाया जाय। उन्हीं के निर्देश से स्वामी विवेकानन्द के उपदेशों का संकलन कर हजारों पुस्तकों का, युवा-वर्ग के बीच निःशुल्क वितरण किया गया। बेलुड़ मठ में भी १२ जनवरी, १९८५ को राष्ट्रीय-युवा-दिवस मनाया गया। उस दिन प्रातः कल्याणी विश्वविद्यालय के ४० छात्रों ने स्वामी विवेकानन्द के मन्दिर के सामने, पूज्य महाराज के हाथों से एक प्रज्वलित मशाल लेकर 'रिले' प्रथा के अनुसार कल्याणी विश्वविद्यालय तक दौड़ना शुरू किया। उस दिन की सभा में युवा-वर्ग का आह्वान करते हुए उन्होंने कहा था, "स्वामी विवेकानन्द तुमलोगों से बहुत आशा करते थे। उन्होंने यह भी कहा था कि उनकी विचार-धाराओं को कार्यान्वित करने का भार युवा-वर्ग को धरोहर के रूप में उन्होंने सौंप दिया है। मैं आशा करता हूँ, तुमलोग स्वामी विवेकानन्द को निराश नहीं करोगे। अतएव आज तुमलोग संकल्प लो कि स्वामी विवेकानन्द के कार्यों में तुमलोग लग जाओगे तथा स्वामी विवेकानन्द भारतवर्ष को जिस पथ पर ले जाना चाहते थे, उसी पथ पर तुमलोग देश को आगे बढ़ाओगे। स्वामी विवेकानन्द के आशीर्वाद तुम सब पर वर्षित हों यही उनसे, मेरी प्रार्थना है।" संयोग से पू० महाराज का यह अंतिम सार्वजनिक भाषण था। उसके कुछ दिनों बाद वे गंभीर रूप से बीमार पड़ गये और १३ मार्च को उन्होंने महासमाधि ले ली। उस दिन समारोह से अपने कमरे में लौटने के बाद उपस्थित वरिष्ठ संन्यासियों की उपस्थिति में उन्होंने उद्दीप्त होकर कहा था, "स्वामी विवेकानन्द के विचारों की अग्नि को चारों दिशाओं में फैला दो।" वास्तव में तन से वृद्ध होते हुए भी मन से वे चिर-युवा ही थे तथा इसी प्रकार का प्रबल उत्साह उनमें सदैव था।

◘

स्वामी वीरेश्वरानन्दजी की विनोदप्रियता

--एक संन्यासी

पूज्य वीरेश्वरानन्दजी महाराज के चरित्र के कुछ विशेष गुण थे—उनकी विनोदप्रियता तथा रहस्य-प्रियता। बचपन से ही ये गुण उनमें खिल उठे थे। उनके बचपन का नाम था पांडुरंग प्रभु। एकदिन शाम को बालक पांडुरंग अपने मामा के घर में पढ़ रहा था। अचानक हवा से प्रदीप बुझ गया। पांडुरंग को लगा, मानो उसी समय कोई कमरे में घुस रहा है। चिल्लाकर उसने पूछना प्रारंभ किया—"कौन? कौन है कमरे के भीतर?" उत्तर आया 'मैं'। पांडुरंग नि फिर पूछा "कौन तुम"? 'मैं रे, मैं।' पांडुरंग ने फिर कहा—"चोर भी तो बोलता है "मैं"। तब उत्तर आया—"ओ रे पांडु, मैं हूँ तेरा मामा!

लगभग १९३० ई० की बात है। स्वामी दयानन्दजी महाराज आये हैं कलकत्ते से देवघर विद्यापीठ। वे हैं स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज के परम मित्र। उसी के बाद वाली ट्रेन से वीरेश्वरानन्दजी महाराज भी पहुँचे कलकत्ता से देवघर, किन्तु मित्र को यह नहीं बताया था कि वे भी जानेवाले हैं? दोपहर के भोजन के बाद विश्राम कर रहे हैं दयानन्दजी महाराज। अचानक उनकी नींद टूट गयी। उनको लगा मानो खिड़की से बिल्ली 'म्याऊँ-म्याऊँ, कर रही है। बिछावन से चटपट उठकर खिड़की के पास गये—वहाँ जाकर देखा तो बिल्ली के बदले उनके मित्र 'प्रभु'। मित्र को देखकर फिर प्रभु महाराज ने आवाज निकाली 'म्याऊँ'। दोनों ठहाका मारकर हँस पड़े।

इस प्रकार की अनेक घटनाएँ हैं। वे जब अद्वैत आश्रम के अध्यक्ष थे, उस समय स्वामी पवित्रानन्दजी (भूपेन महाराज) अंग्रेजी मासिकी 'प्रबुद्ध भारत' के सम्पादक थे।

पवित्रानन्दजी समय का कट्टर पालन करनेवाले थे। भोजन की घंटी लगने पर तुरन्त वे भोजन घर में आ जाते। बाकी सबलोगों को कुछ-न-कुछ देर हो जाती। इससे उन्हें लज्जा होती। प्रतिदिन घड़ी के साथ-साथ कहाँ तक चला जाय? एक दिन वीरेश्वरानन्द जी महाराज ने सब को कहा—"ठहरो, भूपेन महाराज को लेकर कुछ आनन्द करेंगे।" एक दिन भूपेन महाराज ने घड़ी की ओर नजर डालकर देखा कि भोजन की घंटी बजने में अधिक देर नहीं है। शीघ्र स्नान करने गए। जाकर देखा गरम जल नहीं है। इतने में घंटी बज गयी। सबलोग तुरन्त भोजन घर में पहुँच गये, मानो कितने नियमनिष्ठ हों! इस ओर किसी प्रकार से स्नान निपटाकर भूपेन महाराज पहुँचे भोजन घर में। देर से आने के लिए अत्यन्त लज्जित थे। पू० वीरेश्वरा-नन्दजी ने कहा "क्या बात है, भूपेन महाराज, आज आपको देर हो गयी?" भूपेन महाराज ने लज्जित हो कर कहा—"मैं समझ नहीं पाया कि इतना समय हो गया है। फिर स्नान करने के लिए गया तो देखा गरम जल नहीं है।" बाकी सबलोग उस समय मुँह बनाकर हँसने लगे। असल में आश्रम की एकमात्र घड़ी के काँटे को उस दिन आगे कर दिया गया था।

एक दिन एक दुबले-पतले युवक ने आकर पू० महाराज के सामने अपनी समस्या रखी—"महाराज, मुझे एक चिन्ता सदैव सताती है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है—"Physically weak are unfit for the realisation of the self" "शारीरिक रूप से दुर्बल व्यक्ति आत्मा के साक्षात्कार के अयोग्य है। मैं तो दुबला-पतला हूँ—मेरा क्या होगा?" पू० महाराज ने कहा—"नहीं, नहीं, चिन्ता की कोई बात नहीं।

ऐसा कभी मत सोचो। स्वामी विवेकानन्दजी ने जो कहा है, उसका मतलब है कि शरीर अस्वस्थ न हो, कोई गंभीर बीमारी न हो—क्योंकि तब साधना में विघ्न होगा। दुबले-पतले होने से कुछ आता-जाता नहीं है।" फिर हँसकर अपनी देह को दिखाते हुए कहा—"कम-से-कम तुम मुझसे तो दुबले नहीं हो।" युवक ने आनन्द से अपना सिर पू० महाराज के चरणों पर रख दिया और कहा—"नहीं, नहीं, महाराज ऐसा मत कहिए।"

दिनांक १८-५-८१। आज बुद्ध-पूर्णिमा है। पू० महाराज बेलुड़ मठ में अपने निवास-स्थान में बैठे हुए हैं। उसी समय दो ब्रह्मचारियों ने आकर प्रणाम किया और कहा, "महाराज, आज बुद्ध-पूर्णिमा है। इसीलिए प्रणाम करने हम आये हैं।" पूजनीय महाराज ने हँसकर कहा—"तुमलोगों को एक मजे की बात सुनाता हूँ। बहुत वर्षों पहले की बात है। बुद्ध-जयन्ती के अवसर पर बेलुड़ मठ में भगवान् बुद्ध की एक सुन्दर प्रतिमा सजायी गयी थी। पूजा के बाद स्वामी अखण्डानन्दजी महाराज ने हँसी करते हुए हम सभी साधु-ब्रह्मचारियों को कहा—'आज बुद्ध-पूर्णिमा है। जानते हो तो भगवान् बुद्ध के तीन आदेश मन्त्र हैं—बुद्धं शरणं गच्छामि; धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि। अतएव, तुम सभी को तीन-तीन बार साष्टांग प्रणाम करना होगा।' हम सभी ने आनन्दपूर्वक ३-३ बार साष्टांग प्रणाम किये और उनके आशीर्वाद प्राप्त किये।" यह सुनकर दोनों ब्रह्मचारियों ने हँसते हुए कहा—"तब तो महाराज हम भी आज तीन बार आपको साष्टांग प्रणाम करेंगे।" पू० महाराज ने हँसते हुए कहा—"नहीं, तुमलोगों के लिए रियायत है, एक बार करने से ही होगा।" फिर भी दोनों ब्रह्मचारियों ने तीन-तीन बार साष्टांग प्रणाम किये तथा पू० महाराज के आर्शीवाद प्राप्त कर, आनंद-पूर्वक वापस लौटे।

एक दिन पू० महाराज मंदिर से प्रणाम कर लौट रहे थे। उनके निवास-स्थान में, बरामदे में साधु-ब्रह्मचारी दोनों ओर कतार में खड़े होकर पू० महाराज के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे, ताकि उनके लौटने के बाद उन्हें प्रणाम कर सकें। पू० महाराज ने अपने कमरे में जाने के पहले बरामदे में देखा, दोनों ओर कतार में साधु-ब्रह्मचारी हैं। हँसते हुए उन्होंने कहा, "ऐसा लगता है, मानों सैल्युट देने के लिए तुमलोग खड़े हो। तब फिर प्रणाम की क्या आवश्यकता? सैल्युट (Salute) देने से ही हो जाएगा।" साधु-ब्रह्मचारीगण भी "नहीं, नहीं," कहते हुए, हँसते-हँसते उनके पीछे हो चले तथा आनन्दपूर्वक प्रणाम कर लौटे।

इस प्रकार पूजनीय महाराज सदैव आनन्द में रहते थे। आनन्दमय पुरुष थे वे। साधु-ब्रह्मचारीगण भी अपना आध्यात्मिक कल्याण करते हुए सेवा में रत रहें और साथ-साथ आनन्द में भी रहें,—यही वे चाहते थे। एकबार रामकृष्ण मिशन के पटना केन्द्र में वे ठहरे हुए थे। प्रतिदिन रात को साधु-ब्रह्मचारीगण उनके कमरे में जाते तथा पू० महाराज के संग का उपभोग करते। 'क्लास' शुरू होने में अभी देर थी। अतः बाहर बरामदे में कुछ ब्रह्मचारी आपस में गपशप कर रहे थे तथा ठहाका मारकर हँस रहे थे। पू० महाराज के कमरे में एक ब्रह्मचारी थे। उन्होंने इन ब्रह्मचारियों को कहा, "धीरे बोलो। पू० महाराज को असुविधा होगी।" तत्काल सब चुप हो गए। ब्रह्मचारी के वापस लौटने के बाद पू० महाराज ने नाराज होकर उसे कहा, "क्या हुआ, उनलोगों को मना क्यों किया? वे लोग आनन्द कर रहे थे, उसमें बाधा क्यों डाली? मुझे तो कोई असुविधा नहीं हो रही थी।"

पू० महाराज की, कहानी-किस्से सुनाने की शैली भी थी अनोखी। श्रोतागण उनकी गप सुनकर ठहाका मारकर हँसते, किन्तु वे उस समय मन्द हास्य भर करते। बात-बात में वे ऐसे मजेदार किस्से सुनाते कि श्रोतागण हँसकर लोट-पोट हो जाते। कुछ घटनाओं का जिक्र यहाँ अप्रासंगिक न होगा।

दिनांक ९-८-७१। शाम के ७ बजे है। 'ट्रेनिंग-सेन्टर' के ब्रह्मचारीगण आये हैं पूजनीय महाराज के निवास-स्थान में, पू० महाराज के संग का लाभ उठाने के लिए। वर्ष में एक बार ऐसा मौका मिलता है, जब ब्रह्मचारीगण पू० महाराज से निःसंकोच चर्चा कर सकते हैं। उस दिन पू० महाराज समझा रहे थे "कार्य को कैसे पूजा में परिणत किया जाय। पू० महाराज ने कहा, "देखो, हरि महाराज (स्वामी तुरीयानन्दजी—श्रीरामकृष्णदेव के पार्षद्) कहते थे—गाय को केवल सूखी घास देने से वह नहीं खाती किन्तु उसमें कुछ खल्ली मिला दिया जाय तो बड़े चाव से खाती है। उसी प्रकार केवल काम करते रहने से जी ऊब जाता है, मन खराब हो जाता है, किन्तु यदि भगवान् के प्रेम को कार्य में मिला दिया जाय तो वही कार्य पूजा बन जाता है, और मन प्रफुल्ल रहता है। अतएव, सदा प्रयत्न करते रहो, कार्य को पूजा में परिणत करने का।" ब्रह्मचारीगण ने कहा, "महाराज सुनने में तो सब अच्छा लगता है, हम सब जानते भी हैं, किन्तु उपदेश को कार्य में परिणत करते समय सब भुला जाता है।" पू० महाराज ने हँसकर कहा, "एक कहानी सुनो। पाँच शराबी थे। एक बार रात को पाँचों ने कुछ अधिक मात्रा में शराब पी ली। उनमें से एक व्यक्ति को यह विचार आया कि 'मैं मरने का ढोंग करूँ तो कैसा रहे?' उसने बाकी चारों से कहा—"अरे, सुनो मैं मुर्दा बनता हूँ। तुम चारों मुझे कंधों पर उठाकर नीमतला श्मशानघाट ले चलो।" चारों ने उसे एक खटिया में लिटाकर, अपने कंधों पर रखकर चलना शुरू किया। एक चौराहे पर रास्ता नहीं सूझने से इधर-उधर करने लगे। तब ऊपर से मुर्दे का ढोंग करनेवाला व्यक्ति घबड़ाया और चिल्लाकर बोला, "अरे, मैं नीमतला और केवड़ातला दोनों श्मशानों का रास्ता जानता हूँ। किन्तु, क्या करूँ? अभी मुर्दा बना हूँ, इसलिये बता नहीं सकता।" सभी ब्रह्मचारी इसे सुनकर हँसकर लोट-पोट हो गये। तब पू० महाराजजी ने कहा, "हमलोगों का भी यही हाल है। हमलोग जानते तो हैं—क्या भला है, क्या बुरा है। किन्तु, कार्य इस प्रकार करते हैं, मानो कुछ नहीं जानते।"

दिनांक १८-६-८१। प्रातः ६.३० बजे का समय है। आज पू० महाराज निकल पड़े हैं—मंदिर में प्रणाम करने के लिए, बहुत सुबह ही। अन्य दिनों की अपेक्षा बहुत आगे। साथ में हैं—एक संन्यासी सेवक। श्री रामकृष्णदेव का दर्शन करके बाहर निकलते ही पू० महाराज ने घंटी की आवाज सुनी। उन्होंने सेवक से पूछा—"किसलिये यह घंटी बजी?" सेवक ने उत्तर दिया—"चाय की घंटी है।" पू० महाराज ने हँसते हुए कहा—"चलो कुछ आनन्द उठाया जाय। हमलोग भी आज सब साधुओं के साथ मिलकर भोजनशाला में ही चाय पियें तथा सब लोगों को आश्चर्य में डाल दें।" साधु-ब्रह्मचारीगण तो पू० महाराज को अचानक भोजनशाला में देखकर आश्चर्यचकित हो गये। कुछ ब्रह्मचारी दौड़कर उनके बैठने के लिए आसन ले आये। पू० महाराज ने कहा, "यहीं, सबके पास ही आसन लगाओ, एक साथ बैठकर चाय पियेंगे।" बैठने के बाद पू० महाराज स्नेहपूर्वक हँसते-हँसते साधुओं को पूछने लगे—"तुमलोग क्या खा रहे हो? एक ने उत्तर दिया—"महाराज, मूढ़ी (लाई) तथा बुन्दिया।" दूसरे ने कहा—"महाराज, ऐसा मत सोचिए कि प्रतिदिन हम लोग इतना अच्छा नास्ता पाते हैं।" पू० महाराज ने हँसते हुए कहा—"ओह, ऐसी बात है? एक मजेदार घटना सुनो। बहुत वर्षों पहले की बात है। उन दिनों मठ की आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी। बहुत ही साधारण ढंग का भोजन हमलोग करते थे। सुबह केवल चाय मिलती थी, नास्ता कुछ भी नहीं। एक दिन एक भक्त मठ में आये। पूजनीय महापुरुष महाराज (स्वामी शिवानन्दजी महाराज, भगवान रामकृष्णदेव के पार्षद्) ने उन्हें दोपहर का भोजन कराया। उस दिन कुछ विशेष अवसर होने के कारण खीर बनी थी। कुछ दिनों बाद फिर वे भक्त मठ में आये। उस दिन भी संयोग से विशेष अवसर पर खीर बनी थी। भक्त ने

सोचा—"साधु लोग तो बड़े मजे में हैं। प्रतिदिन खीर आदि अच्छी-अच्छी चीजें खाते रहते हैं।" पू० महापुरुष महाराज ने उनके मन का भाव समझकर हँसते हुए उनसे पूछा, "क्यों, महाशय, क्या बात है? जिस दिन खीर बनती है, उसी दिन आकर हाजिर होते हैं? खीर की गन्ध मिलती है क्या?" पू० महाराज से इस घटना को सुनकर सभी साधु-ब्रह्मचारी हँस पड़े।

बेलुड़ मठ की घटना। दिनांक २६-६-८१। शाम के पाँच बजे का समय है। अन्य दिनों की भाँति साधु-ब्रह्मचारीगण पू० महाराज के निवास-स्थान में प्रणाम करने आये हैं। ८-१० ब्रह्मचारियों का एक समूह आया प्रणाम करने। बाकी साधु-ब्रह्मचारी अभी नहीं पहुँचे हैं। पू० महाराज को एक मजाक सूझा। हँसते हुए उन्होंने इशारा करके उन ब्रह्मचारियों को नजदीक आने को कहा। बाद में धीरे से अपने पास रखे डिब्बे में से कुछ टॉफी निकालकर सबके हाथ में एक-एक टॉफी धरा दी और धीरे से हँसते हुए कहा, "देखो, चुपचाप खा लेना। किसी को बताना मत।" ब्रह्मचारियों ने हँसते हुए कहा, "ठीक है, देखा जायेगा।" पू० महाराज ने फिर हँसते हुए कहा, "एक मजेदार किस्सा सुनो। एक गरीब माँ के कई बच्चे थे। वह एक बार अतिथियों के लिए चुपके से पूड़ियाँ पका रही थी, ताकि बच्चे जानने न पावें। उसी समय दो बच्चे पकने की आवाज सुनकर चले आये। अब माँ क्या करती? दोनों को एक-एक पूड़ी देकर बोली, "यह खा लो, किन्तु अपने-अपने भाइयों को बताना मत, समझे? बच्चे खुश होकर पूड़ी खाते-खाते चले गये। और भाइयों से जाकर कह दिया, "माँ पूड़ियाँ तल रही है। तुमलोग चुपके से जाना, हमारा नाम मत लेना।" फिर क्या था! एक-एक कर सभी भाई माँ के पास जाने लगे और माँ की सभी पूड़ियाँ खतम। यह सुनकर सभी ब्रह्मचारी हँसने लगे और कहा—"तब तो महाराज, हम भी अपने भाइयों को भेजेंगे टॉफी के लिए।" उस दिन सभी ब्रह्मचारियों ने टॉफी का आनन्द लिया और इस किस्से का भी।

दिनांक १६ फरवरी, १९८५। शिवरात्रि के आगे का दिन है। शाम के पाँच बजे का समय। पू० महाराज बैठे हैं बेलुड़ मठ स्थित अपने निवास-स्थान में। श्रीरामकृष्ण की जन्मतिथि के दिन जिन लोगों की ब्रह्मचर्य एवं संन्यास-दीक्षा होगी, वे सभी ब्रह्मचारी पू० महाराज से, मठ की प्रथा के अनुसार, यह अनुमति लेने आये हैं कि वे शिवरात्रि का उपवास करेंगे कि नहीं। पू० महाराज ने कहा—"अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार सभी लोग कल उपवास कर सकते हैं। जो निर्जला उपवास नहीं कर सकते, वे शरबत आदि ग्रहण कर सकते हैं। किन्तु, अपने स्वास्थ्य की ओर भी नजर रखना। क्योंकि दो दिन बाद ही ठाकुर की जन्मतिथि के दिन तुमलोगों को उपवास करना ही होगा जब तुम्हारी ब्रह्मचर्य एवं संन्यास-दीक्षा होगी। तत्पश्चात् उन्होंने हँसते हुए कहा, "एक मजेदार कहानी सुनो। एक अत्यंत धर्मपरायण महिला थी। व्रत-उपवास आदि बहुत करती थी। किन्तु, पतिदेव ठीक विपरीत स्वभाव के थे। वे व्रत-उपवास से चिढ़ते थे। एक बार शिवरात्रि के अवसर पर उस महिला ने अपने पति से आग्रह किया कि वे भी आज उपवास रखें। पर, पतिदेव राजी नहीं हुए। महिला ने जब बहुत जिद की, तब पतिदेव ने प्रथम प्रहर की पूजा तक उपवास करने की बात मान ली। जब प्रथम प्रहर की पूजा समाप्त हुई तब पतिदेव खाने को माँगने लगे। महिला ने अनुनयपूर्वक कहा, "जब इतना कष्ट सह ही लिया तो दूसरे प्रहर की पूजा भी शेष होने दीजिये न!" पतिदेव क्या करते! दूसरे प्रहर की भी पूजा शेष हुई। अब पति महाशय फिर खाना माँगने लगे। उन्होंने कहा, "जल्दी से खाना दो। नहीं तो हालत बहुत खराब है।" महिला तीसरे प्रहर की पूजा शेष होने तक उपवास रखने के लिए पुनः प्रार्थना करने लगी। इतने में पड़ोसी के घर से रोने-पीटने की आवाज सुनायी पड़ी। महिला ने पतिदेव से

कहा, "यह रोना-धोना कैसा ? क्या हुआ इन्हें ?" पति महाशाय बोले, "होगा और क्या ? जो होना था वही हुआ। तुम्हारी जैसी स्त्री के पल्ले पड़कर कोई पति उपवास कर रहा होगा। अब सब खतम। इसी से समझ लो, तुम अब क्या करोगी ?" पू० महाराज से यह कहानी सुनकर सब ब्रह्मचारी ठहाका मारकर हँस पड़े। महाराज पुनः चुटकी लेते हुए बोले, "देखो, तुम लोग भी कहीं ऐसा उपवास मत करना।"

शारीरिक दुर्बलता एवं कठिन यंत्रणा के बीच भी पू० महाराज की इस विनोदप्रियता में कोई कमी नहीं होती थी। सन् १९८३ ई० में जब वे कैंसर से भयंकर रूप से आक्रांत हुए थे, तब उन्हें ठाकुर पुकुर 'कैंसर सेन्टर' में चिकित्सा के लिए ले जाया गया था। जब 'Cobalt Therapy' (कोबाल्ट थेरेपी) चल रही थी, तब सात-आठ दिनों के लिए उनका गला बिल्कुल अवरुद्ध (Blocked) हो गया था। कुछ भी खाना या बात-चीत करना असंभव था। कुछ भी कहना होना तो वे कागज पर लिखकर बताते थे। डॉक्टर लोग उन्हें बार-बार आग्रहपूर्वक कहते, "महाराज, आपको कुछ खाना ही होगा, यदि कष्ट हो तब भी। अन्यथा आप और भी कमजोर हो जायेंगे। जबाव में महाराज ने लिखकर बताया, 'What is gained by eating is lost by saliva choking" (खाने से जो कुछ भी शक्ति प्राप्त होती है वह सब लार के अवरोध से क्षय हो जाती है।) इतनी यंत्रणा के बीच भी कैसी विनोदप्रियता !

जीवन के शेषकाल तक उनकी यह विनोदप्रियता बनी रही। उनकी महासमाधि के कुछ ही दिनों पूर्व की घटना है—१७ फरवरी, १९८५। शिवरात्रि का दिन। पू० महाराज बहुत अस्वस्थ हैं। अत्यधिक दुर्बलता के कारण आज मंदिर नहीं जा पाये हैं। एक संन्यासी उनके पास गये हैं। बात-चीत के प्रसंग में पू० महाराज ने कहा कि उनको अब जीने की इच्छा नहीं है। यह बीमारी अब दूर नहीं होगी। संन्यासी ने कहा, "महाराज, डॉक्टर तो कह रहे हैं—आपके स्वास्थ्य में कोई खास गड़बड़ी नहीं है। सभी अवयव अच्छे हैं। पू० महाराज ने हँसकर कहा, "डॉक्टर लोग तो बोल रहे हैं—'All organs are good' (सभी अवयव अच्छे हैं) अच्छा, एक मजेदार किस्सा सुनो। एक व्यक्ति मोटरकार खरीदने गया था। दुकान में जाकर उसने एक बढ़िया गाड़ी देने को कहा। दुकानदार ने एक गाड़ी देते हुए कहा, "यह ऐसी गाड़ी है जिसके 'All parts are equally good' (सभी पुर्जे समान रूप से अच्छे है)। मोटरकार खरीदकर, उसे खुद ही चलाकर वह ले गया। कुछ दूर जाने के बाद ही गाड़ी के चारों पहिये बाहर निकल आये। किसी प्रकार बचकर वह व्यक्ति आगबबूला होकर वापस दुकान में जाकर, बोला, 'तुमसे मैंने अच्छी गाड़ी देने को कहा था। किन्तु तुमने ऐसी गाड़ी दी जिसके चारों पहिये एक साथ निकल गये। धंधे के नाम पर ठगते हो ?" दुकानदार ने शांत भाव से उत्तर दिया, "शांत होइए जनाब। मैंने तो पहले ही आपसे कहा था इसके all parts are equally good. यदि इसके सभी पुर्जे समान रूप से अच्छे नहीं रहते तो क्या यह संभव था कि चारों पहिये एक साथ निकल जाते ? पू० महाराज ने किस्सा सुनाकर हँसते हुए कहा, "देखो इस शरीर की भी यही हालत है। 'All organs are good' डॉक्टर लोग सोच रहे हैं कि वे इस शरीर को फिर स्वस्थ बना देंगे मानो कि किसी युवक की चिकित्सा कर रहे हैं। जानते नहीं मेरी उम्र ९३ वर्ष है। और मैं भी जाने के लिए गठरी बाँधकर बैठा हूँ।

अन्तिम बीमारी के समय एकबार जब उनके प्रमुख चिकित्सक ने कहा कि महाराज आप अच्छे हो जायेंगे। तब पू० महाराज ने हँसकर कहा, "देखो, १९८३ में जब कैंसर हुआ था, उस समय मुझे दो वर्षों की मुहलत (Extension) मिली थी। वह अवधि अब शेष हो चुकी है। जितने दिनों तक इस मकान में (शरीर में) रहने की बात थी, उससे कहीं अधिक रह चुका हूँ। अब तो मकान मालिक मुझे भगा ही देगा। अब अन्तिम समय आ गया है।"

१ मार्च, १९८५ को बात है। पू० महाराज बहुत दिनों से गंभीर रूप से बीमार हैं। सब समय शय्या पर लेटे रहने के कारण उन्हें 'Bedsore' होने की संभावना है। अतः उनके प्रमुख चिकित्सक, डॉ० निरंजन बनर्जी, ने यह व्यवस्था की है कि दूसरे दिन से उन्हें Sponge-bath' कराया जायगा। उन्होंने पू० महाराज को समझाते हुए कहा, 'महाराज, कल से सेवा प्रतिष्ठान अस्पताल से परिचारकगण प्रतिदिन आयेंगे तथा आपको Sponge-bath करा कर पाउडर लगा देंगे।" पू० महाराज ने उस कष्ट में भी चुटकी लेते हुए कहा, "देखो, हम संन्यासी लोग पाउडर वगैरह 'Cosmetics' प्रसाधनों का व्यवहार नहीं करते।" यह सुनकर डॉक्टर बनर्जी तथा अन्य उपस्थित लोग हँस पड़े। डॉक्टर ने कहा, "नहीं, महाराज! यह पाउडर आपके प्रसाधन के लिए नहीं, आपको Bed-sore से बचाने के लिए है।"

४ मार्च, १९८५। रात्रि के दस बजे हैं। पू० महाराज के निवास-स्थान में वातावरण आनन्द से भरपूर है। संन्यासी, ब्रह्मचारी, डॉक्टर सभी प्रफुल्ल वदन हैं, क्योंकि दो घंटे पूर्व ही X-ray के माध्यम से देखा गया कि महाराज के भीतरी अवयवों में कैंसर का नामो-निशान नहीं है। लगभग दो सप्ताह से पू० महाराज एक बूँद जल भी गले से ग्रहण नहीं कर पा रहे थे। अतः डॉक्टरों ने सोच लिया था कि अबतक कैंसर काफी फैल चुका होगा। अस्तु, डॉक्टरों ने आनंदपूर्वक उनके पास जाकर कहा, "महाराज, सब कुछ ठीक है। भीतर में कोई गड़बड़ नहीं है। अब केवल कमजोरी ही आपके स्वास्थ्य में व्यवधान है। उसे दूर करने का एकमात्र उपाय है कि आप कष्टपूर्वक ही सही, धीरे-धीरे कुछ खाइये। आप जैसे ही न्यूनतम आवश्यक भोजन ग्रहण करना शुरू कर देंगे, हमलोग 'drip'(ड्रिप) देना बंद कर देंगे।" पू० महाराज ने हँसकर कहा, "मैं प्रयत्न करूँगा।" फिर चुटकी लेते हुए उपस्थित डॉक्टरों से कहा, "देखो, काफी रात हो चुकी है। घर लौटोगे तब तुमलोगों की पत्नियाँ अच्छी तरह से खबर लेंगी। तब क्या करोगे?" फिर अपने संन्यासी सेवक को बुलाकर आलमारी से कुछ वस्तुओं को निकालने के लिये कहा। सभी डॉक्टरों को उन्होंने माँ का प्रसाद—साड़ियाँ, चूड़ियाँ तथा अन्य वस्तुएँ देते हुये कहा—"ये सब अपनी पत्नियों के वास्ते ले जाओ। उनलोगों का मुह बंद हो जाएगा। तुम्हें डाँट नहीं खानी पड़ेगी।" इतनी भयंकर शारीरिक यंत्रणा के बीच भी उनकी विनोदप्रियता तथा करुणा को देखकर उपस्थित सभी लोग आश्चर्यित रह गए। डॉक्टर लोग आनन्दपूर्वक घर लौटे।

५ मार्च, १९८५। सुबह ग्यारह बजे का समय है। पूजनीय भरत महाराज पूज्य महाराज का स्वास्थ्य देखने आये हुए हैं। पू० भरत महाराज ने कहा, "तुम शीघ्र ही स्वस्थ हो जाओ। इस प्रकार बिस्तर पकड़े रहने से नहीं चलेगा। हजारों भक्त तुम्हारे लिये रो रहे हैं। कम से कम उनका ख्याल करके शीघ्र स्वस्थ हो जाओ। पू० महाराज ने कहा, "सब ठाकुर की इच्छा।" भरत महाराज ने कहा, "ठाकुर की इच्छा पर छोड़ने से नहीं चलेगा। पुरुषकार के ऊपर जोर दो। तुम इच्छा करने से ही स्वस्थ हो सकते हो। 'I' (मैं) के ऊपर जोर दो। पू० महाराज ने उस अवस्था में भी मंद हास्य करते हुए, चुटकी लेकर कहा, "किन्तु, Eye (आँख) नहीं है, क्या करूँ? वास्तव में महाराज ने अपनी देह के त्याग का संकल्प उसी दिन ले लिया था जब उन्हें पता चला कि उनकी दृष्टि-शक्ति बिल्कुल चली गयी हैं। क्योंकि वे दूसरों पर निर्भर रहना नहीं चाहते थे।

१३ मार्च, १९८५। पू० महाराज की महासमाधि के चार घंटे पूर्व की बात है। उनके स्वास्थ्य में काफी उतार-चढ़ाव आ रहा था। कभी यंत्रणा बहुत बढ़ जाती तो कभी कम हो जाती। १२ मार्च की रात को ऐसा लग रहा था कि उसी रात को देह छूट जायगी। किन्तु, १३ तारीख की सुबह स्वास्थ्य बहुत सुधर गया था। फिर दोपहर बारह बजे से कष्ट बढ़ने लग गया। उस कष्ट के बीच भी उन्होंने आश्रम के एक वरिष्ठ संन्यासी को हँसते हुए कहा, "देखो, Up-down! up-down! (अप-डाउन, अप-डाउन)।" संन्यासी ने भी हँसते हुए कहा, "हाँ महाराज, आपका स्वास्थ्य इसी तरह चल रहा है। कभी अच्छा तो कभी बुरा।" इस प्रकार पूजनीय महाराजजी की विनोदप्रियता जीवन के अंतिम क्षणों तक अक्षुण्ण बनी रही थी। ◻

साधना

—श्रीमत् स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज

[श्रीमत् स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज ने रामकृष्ण मठ, मद्रास में भक्तों को साधना के सम्बन्ध में २४-११-१९६८ को सम्बोधित करते हुए जो कहा था, वह 'वेदान्त-केसरी' अँगरेजी मासिक के मार्च १९६९ अंक में प्रकाशित हुआ था। प्रस्तुत लेख वहीं से गृहीत और अनुवादित होकर विवेक ज्योति, वर्ष २२ अंक १ में प्रकाशित हुआ था। इसे हमने वहीं से साभार गृहीत किया है। अनुवादक हैं, ब्रह्मचारी शम्भुचैतन्य, (अब स्वामी निखिलेश्वरानन्दजी महाराज) जो सम्प्रति रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची में सेवारत हैं।—सं०]

आध्यात्मिक साधना संघर्ष के सिवा और कुछ नहीं है। यह एक ऐसी स्थिति को प्राप्त करने का संघर्ष है, जिसमें रहते हुए हम कभी भी जीवन के उलट-फेर से प्रभावित नहीं होते और जिसे पाकर हम अनुभव करते हैं कि अब और कुछ भी पाने को शेष नहीं रहा। उस स्थिति में हमें स्पष्ट अनुभव होगा कि अब हमें कोई भी दुःख या कष्ट नहीं है; दुःख से हमारा सारा नाता टूट जाएगा। जब हम ऐसी स्थिति को प्राप्त कर लेंगे, तब निरन्तर आनन्द में रहेंगे तथा संसार के दुःख हमें प्रभावित नहीं करेंगे और हमारे जीवन में एक आमूल परिवर्तन आ जाएगा। गीता में भगवान का कथन है—"जिस अवस्था में स्थित हुआ वह बड़े भारी दुःख से भी विचलित नहीं होता है।" उस स्थिति को पाना सचमुच एक संघर्ष है, जिसे हमें अत्यधिक दृढ़ता एवं अथक उत्साहपूर्वक चलाये जाना होगा।

हमारे सभी दुःखों का कारण यह है कि हमने बाह्य जगत् से अपना तादात्म्य स्थापित कर लिया है। हमने सम्पत्ति के साथ, रिश्तेदारों के साथ, धन के साथ और भी सबके साथ अपना तादात्म्य स्थापित कर लिया है। बाह्य जगत् में यदि कुछ घटता है, तो हम विक्षुब्ध हो जाते हैं तथा अपना सन्तुलन खो बैठते हैं। बाह्य जगत् के साथ हमारा यह सम्बन्ध 'मैं' और 'मेरा' की भावना से होता है, और यही हमारे सब बन्धनों एवं कष्टों का कारण है। अतः हमें इस बन्धन से, बाह्य जगत् के इस सम्पर्क से मुक्त होना होगा। जब हम बाह्य जगत् में आसक्त होते हैं, तब बद्ध हो जाते हैं और जब हम बाह्य जगत् के प्रति अनासक्त होते हैं, तब मुक्त। अतः हमारा बन्धन और हमारी मुक्ति हमारे मन पर ही निर्भर है। जब तक मन हमसे सहयोग नहीं करता, हम कोई आशाप्रद फल प्राप्त नहीं कर सकते। गुरु की, ईश्वर की और उनके भक्तों की कृपा प्राप्त करके भी, एक की कृपा के बिना अर्थात् मन की कृपा के बिना, मन की सहायता के बिना, हमारे सब प्रयत्न निरर्थक हो जाते हैं। इसलिए मन ही महत्वपूर्ण है। ईश्वर ने इन्द्रियों को बहिर्मुखी बनाया, इसलिए इन्द्रियाँ सर्वदा विषयों की ओर दौड़ती हैं, किन्तु जो लोग सत्य का साक्षात्कार करना चाहते हैं, उन्हें अपनी इन्द्रियों को बाह्य जगत् से विमुख करना होगा और भीतर की ओर मोड़ना होगा। हमें मन एवं इन्द्रियों को वश में करना होगा।

जब तक हमें यह स्पष्ट प्रतीत नहीं होता कि बाह्य

जगत् अनित्य और क्षणभंगुर है, तबतक बाह्य जगत् के प्रति हमारी यह आसक्ति नहीं जाएगी। जब हमें इसकी स्पष्ट प्रतीति होगी, तभी बाह्य जगत् के प्रति हमारी आसक्ति दूर होगी। इसके लिए हमें विवेक-पूर्वक विचार करना होगा और जानना होगा कि सत्य क्या है, असत्य क्या है; हमें दुःख का कारण ढूँढ़ निकालना होगा और जानना होगा कि इस जगत् का मूल आधार क्या है। इस प्रकार से यदि हम विवेक का अभ्यास करें तथा यह जानने का प्रयत्न करें कि सत्य क्या है, असत्य क्या है, और साथ ही सत्य को पाने का प्रयत्न करें एवं असत्य को त्याग दें, तभी बाह्य जगत् से हमारे अनासक्त होने की कुछ आशा है। हमें केवल इहलोक नहीं, परलोक की भी समस्त भोगस्पृहा को त्यागना होगा। सामान्यतः हम जो कुछ अच्छा काम करते हैं—यज्ञ, दान अथवा दूसरों की सेवा करते हैं, वह सब पुण्य अर्जित करने के लिए करते हैं। इन अच्छे कार्यों से प्राप्त पुण्य के द्वारा हम स्वर्ग में जा सकते हैं तथा वहाँ पुण्य का फल भोग सकते हैं; किन्तु शास्त्रों का यह भी कथन है कि यह भोग भी स्थायी नहीं होता। इसकी भी एक सीमा है और जब यह सीमा समाप्त हो जाती है, हमारे पुण्य समाप्त हो जाते हैं, तब हमें इस संसार में पुनः लौटना पड़ता है तथा नये सिरे से आरम्भ करना पड़ता है। इसलिए जो विवेकी हैं, वे जान लेते हैं कि स्वर्ग में जाने की इच्छा भी एक बन्धन है, जो हमारी भगवत्-प्राप्ति में बाधक होती है। अतः परलोक के भोगों को भी त्यागना होगा। तदनन्तर हमें भगवत्साक्षात्कार के लिए व्याकुलता लानी होगी। इसी जीवन में ईश्वर के दर्शन करने की तीव्र उत्कण्ठा हमारे मन में होनी चाहिए, तभी हम तीव्रता से आगे बढ़ पाएँगे।

हमें यह भली-भांति समझना होगा कि इस संसार में आने का उद्देश्य ईश्वर का दर्शन करना ही है। तीन वस्तुएँ दुर्लभ कही गयी हैं। मनुष्य का जन्म, मोक्ष की आकांक्षा और महापुरुषों का सान्निध्य। मनुष्य-जीवन का मुख्य उद्देश्य ईश्वर के दर्शन करना है, किन्तु हम सदा इसको भूल जाते हैं तथा अपना जीवन व्यर्थ गँवा देते हैं। एक जापानी लड़के के बारे में एक सुन्दर कहानी है। किसी जापानी परिवार में एक लड़का नौकर था। एक दिन सुबह उसे कुछ खरीदने के लिए शहर भेजा गया। उसके मालिक ने उसे आवश्यक पैसे दिये। वह लड़का शहर में गया तो, किन्तु वह एक देहाती लड़का था, इसलिए शहर की चमक-दमक, दुकानों और अन्य वस्तुओं को देख मोहित हो गया। वह रोमांच का अनुभव करता हुआ कभी रुकता, कभी देखता, एक दुकान से दूसरी दुकान तक जाता, एक स्थान से दूसरे स्थान में घूमता और इस प्रकार शहर में आने का उद्देश्य ही भूल गया। शाम को वह अपने मालिक के लिए बिना कुछ खरीदे ही वापस लौटा। लौटने पर उसके मालिक ने उससे पूछा, "मेरी चीजें कहाँ हैं?" उसने कहा, "अरे, मैं तो वह सब खरीदना भूल ही गया—शहर की चकाचौंध से इतना मोहित हो गया कि सामान खरीदना बिल्कुल भूल गया।" हमारी भी प्रायः यही स्थिति है। हम इस संसार में आये हैं। मनुष्य-जन्म पाने के बाद भगवत्साक्षात्कार की चेष्टा करने के बदले हम इन्द्रिय-सुख की ओर जाते हैं और अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य भूल जाते हैं। हम सत्पुरुषों का संग नहीं खोजते, जो अति आवश्यक है। यदि हम सत्पुरुषों का संग करें तो उन्हें देख, उनकी बातें सुन, उनके आचरण को लक्ष्य कर और जीवन के प्रति उनका रुख देख हम प्रभावित होंगे तथा उनका अनुकरण करने की चेष्टा करेंगे। जब कभी हम एक धार्मिक मनुष्य के पास जाते हैं, तो हमारा मन उच्च स्तर पर उठ जाता है और कम-से-कम उस समय तक के लिए हम संसार को और सांसारिक झमेलों को भूल जाते हैं। यदि हम सत्पुरुषों का संग लगातार करें, तो संसार के प्रति हमारी आसक्ति धीरे-धीरे कम होगी; किन्तु सत्पुरुषों का संग पाना बहुत कठिन है, और दीर्घकाल तक वह पाना तो और भी कठिन है। फिर भी हम धर्मशास्त्र पढ़ सकते हैं। श्रीरामकृष्णदेव की

जीवनी, श्रीरामकृष्ण वचनामृत, भागवत्, गीता, सन्तों की जीवनियाँ आदि पढ़ना अच्छा है। जब हम ऐसी पुस्तकों को पढ़ते हैं, तब हमें लगता है मानो हम महापुरुषों के संग में हैं। इस प्रकार हम सत्संग कर सकते हैं और भगवत्साक्षात्कार के लिए संघर्ष जारी रख सकते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण उद्धव से कहते हैं कि उन्होंने साधकों की सामर्थ्य के अनुसार भगवत्साक्षात्कार के लिए तीन विभिन्न मार्गों का निर्देश किया है। जो लोग अनासक्त हैं, संसार के भोगों की ओर से उदासीन हैं, उन लोगों के लिए ज्ञान-मार्ग का निर्देश किया गया है तथा जो लोग संसार में तथा इन्द्रिय-भोगों में अत्यधिक आसक्त हैं, उनके लिए कर्मयोग का। फल की आकांक्षा से किया गया गया कर्म भी उपयोगी है, क्योंकि कालान्तर में यह हमें ऐसी स्थिति को पाने में सहायता करता है, जब हम फल की आकांक्षा के बिना कर्म करने में समर्थ हो सकते हैं। जब हम फल की आकांक्षा के बिना कर्म करना प्रारम्भ करते हैं, तब हमारे मन में विवेक-विचार का उदय होता है। हम जानने का प्रयत्न करते हैं कि जगत् सत्य है या मिथ्या और हम सत्य को मिथ्या से अलग करने की चेष्टा करते हैं। जब हम समझ लेते हैं कि जगत् आखिर में मिथ्या ही है, तब हम सत्य को पाने के लिए आतुर होते हैं और किसी प्रबुद्ध व्यक्ति के पास उपदेश के लिए जाते हैं एवं धीरे-धीरे सत्य की ओर अग्रसर होने का प्रयास करते हैं। किन्तु अधिकांश व्यक्ति बीच की अवस्था में हैं। वे लोग न तो सांसारिक भोगों की ओर से उदासीन ही हैं, न ही उनमें पूर्णतः लिप्त। उनमें ईश्वर के प्रति कुछ भक्ति है, कुछ विश्वास है, किन्तु वासनाओं का प्रलोभन पूर्णतया मिटा नहीं है। इनलोगों के लिए भक्ति-मार्ग का निर्देश किया गया है।

भक्ति के इस मार्ग में हम द्वैत से प्रारम्भ करते हैं! हम कहते हैं कि ईश्वर महान् हैं, हम उनकी पूजा करते हैं, उन्हें भेंट चढ़ाते हैं और इस प्रकार हम उन्हें सदा अपने से भिन्न एवं स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में सोचते हैं। इस प्रकार द्वैत से आरम्भ करके हम सगुण-साकार ईश्वर के सर्वोच्च स्वरूप की ओर अग्रसर होते हैं। कालान्तर में हम उनकी कृपा से उससे भी उच्चतर अवस्था में—निर्गुण ईश्वर में उठ जाते हैं। सगुण ईश्वर का दर्शन करना अपने-आप में एक बहुत बड़ी बात है; और एक बार यदि हम सगुण ईश्वर का दर्शन कर लें और उनकी कृपा प्राप्त कर लें तो निर्गुण ईश्वर की उपलब्धि अधिक कठिन न होगी। सगुण ईश्वर की उपासना के तीन सोपान हैं। पहला सोपान वह है, जिसमें हम आनुष्ठानिक पूजा करते हैं। जब हम बाह्य पूजा में बहुत अधिक रुचि लेने लगते हैं, जब इस प्रकार की पूजा में हमारा मन अनुरक्त हो जाता है, तब उसमें जप के लिए उन्मुखता पैदा होती है। बार-बार भगवान् का नाम दुहराना ही जप है। जप से हमारा मन एकाग्र होता है और अन्त में हमें वह भगवत्प्राप्ति की ओर ले जाता है।

भगवन्नाम की महत्ता को दर्शानेवाली एक सुन्दर पौराणिक कहानी है। एक बार सत्यभामा ने व्रत लिया कि वे श्रीकृष्ण को सोने से तौलेंगी और वह सोना दान में दे देंगी। श्रीकृष्ण को तराजू के एक पलड़े पर बैठाया गया और सत्यभामा ने दूसरे में सोना रखा। किन्तु श्रीकृष्ण बहुत भारी थे। सत्यभामा जितना सोना पा सकीं, सब तराजू में रखा गया, किन्तु फिर भी श्रीकृष्ण का पलड़ा जमीन से ऊपर नहीं उठा। वे बहुत ही उलझन में पड़ गयीं और रुक्मिणी के पास सहायता के लिए गयीं तथा उन्हें सब कुछ बताया। रुक्मिणी ने कहा, "अच्छा, चिन्ता मत करो, मैं आती हूँ।" उन्होंने आकर तुलसी का एक पत्ता लिया और उस पर श्रीकृष्ण का नाम लिख उसे सोनेवाले पलड़े पर रख दिया। उसके रखते ही पलड़ा झुक गया। यह नाम की महत्ता को दर्शाता है। नाम और नामी अभेद हैं। यदि हम भगवन्नाम का जप करें तो हम उनके दर्शन पा लेंगे, क्योंकि नाम में भगवान् को प्रकट करने की शक्ति है।

कई लोग साधना प्रारम्भ तो करते हैं, किन्तु अल्प समय में ही जब उन्हें कोई प्रत्यक्ष फल नहीं मिलता, तो निराश हो जाते हैं। किन्तु आध्यात्मिक-साधना एक लम्बी प्रक्रिया है। मन के स्थिर होने से पहले बहुत-सी चीजों को सीखना और करना आवश्यक होता है। हमें दीर्घकाल तक संघर्ष करते रहना होगा। यदि हम एक लपेटी हुई टिन की चादर को सीधा करना चाहें तो केवल एक बार उसे खोलकर रखने से नहीं होगा। हमें उसे पहले उल्टी दिशा में मोड़ना होगा तथा सुदीर्घकाल तक उसे दबाकर रखना होगा। तब कहीं वह सीधी होगी और फिर नहीं मुड़ेगी। हमारा तो दीर्घकाल से संसार के बारे में सोचने का अभ्यास बना हुआ है—केवल इसी जीवन में नहीं, अपितु पूर्वजन्मों से; इसलिए हठात् हमारे मन का वश में हो जाना और भगवान् के बारे में सोचना असम्भव की प्रत्याशा करना मात्र है। मन तो सर्वदा टालना और भागना चाहता है। जब-जब वह पथभ्रष्ट होता है, तब-तब हमें उसे वापस सही मार्ग पर लाना होगा एवं इष्ट के ध्यान में निमग्न करना होगा। निरन्तर अभ्यास आवश्यक है। यह स्थिति लाने के लिए कि मन में एक ही शुभ विचार बना रहे और बाकी सब दूर हो जाए, लगातार अभ्यास की आवश्यकता है। पर्याप्त दृढ़ता और उत्साह से अभ्यास जारी रखना होगा। हमें केवल इष्ट के बारे में ही सोचना होगा और बाकी सब विचारों को निकाल देना होगा; और यह सब पर्याप्त लम्बे समय तक करते रहना होगा। तभी हमें ध्यान का स्वाद मिल पाएगा। ऐसा कहा जाता है कि जो लोग पित्त से पीड़ित होते हैं, उन्हें औषध के रूप में मिसरी दी जाती है। किन्तु उन्हें वह बहुत कड़वी लगती है। फिर भी मिसरी ही उनके लिए औषध होने के कारण उन्हें दीर्घकाल तक खिलायी जाती है। जब रोग दूर हो जाता है, तब उनके स्वाद की पुरानी क्षमता लौट आती है और उन्हें मिसरी मीठी लगने लगती है। इसी प्रकार हमलोग सांसारिक भोगों के पित्त से पीड़ित हैं; अतः भगवान् का नाम कड़वा लगता है, किन्तु भगवान् का नाम लेना और उनका ध्यान करना ही इस रोग का एकमात्र उपचार है। हमें निरन्तर जप करते रहना चाहिए, इससे कालान्तर में संसार के प्रति हमारी आसक्ति छूट जाएगी, हम पित्त से मुक्त हो जाएँगे और तब भगवान् का नाम मधुर लगने लगेगा।

प्रारम्भ में निःसन्देह हमारे लिए यह सब कष्टकर होगा; ध्यान करना हमारे लिए एक बहुत ही नीरस बात होगी, किन्तु अथक प्रयत्नों के द्वारा हम इस नीरस कालावधि को पार कर सकते हैं। हममें सर्वदा यह विश्वास रहना चाहिए कि हम इसी जीवन में भगवान् का दर्शन करेंगे। इस प्रकार के विश्वास के बिना आध्यात्मिक जीवन में प्रगति करना सरल न होगा। हमेशा कठोर प्रयत्न करना चाहिए तथा सर्वदा इसका भी ज्ञान होना चाहिए कि ठीक-ठीक वैराग्य क्या है। वैराग्य किसे कहते हैं? 'विराग' का अर्थ है—मन में सुप्त सभी वासनाओं को त्याग देना। यदि हम विवेक का अभ्यास करें और मन में जितनी वासनाएँ हैं, उनको त्याग दें तथा इस प्रकार मन को शुद्ध कर लें, तो हमारा ध्यान भी सुस्थिर होगा। यदि मन शुद्ध है तथा उसमें वासनाएँ नहीं हैं तो मन चंचल नहीं होगा। वासनाएँ ही मन को चंचल करती हैं, और यदि मन में कोई वासना न रहे तो यह शान्त और स्थिर हो जाएगा। ऐसे मन के द्वारा हम ईश्वर का या आत्मा का दर्शन कर सकेंगे। अतएव, मन को शुद्ध करने का सतत् प्रयत्न आवश्यक है। हरदम हमें मन की निगरानी करनी होगी—एक पुलिस अफसर के समान निगरानी करनी होगी। निर्दिष्ट ध्येय वस्तु को छोड़कर जब कभी भी मन बाहर भागे तथा दूसरी बातें सोचने लगे, तब उसी क्षण वहाँ से हटाकर पुनः ध्येय वस्तु में लगाना होगा। ऐसा सतत प्रयास अति दीर्घकाल तक चलाये जाना होगा। दीर्घ अभ्यास के बाद संघर्ष सहज हो जाएगा और मन इतने दिनों तक जैसा सोचता आ रहा था, उससे भिन्न प्रकार से सोचने का अभ्यस्त होगा। तब मनोनिग्रह स्वतः सिद्ध हो जाएगा।

श्रीरामकृष्णदेव कहा करते थे कि जिसने ईश्वर के दर्शन कर लिये हैं, उसके पाँव कभी बेताल नहीं पड़ते। अनुचित कदम उठाना उसके लिए असम्भव हो जाता है, क्योंकि ईश्वर-दर्शन की प्राप्ति तक उसने सारा जीवन दृढ़तापूर्वक मनोनिग्रह किया है, और अब उसके मन के लिए विचलित होना, डगमगाना और गलत काम करना असम्भव हो जाता है। प्रारम्भ में एक साधारण व्यक्ति के लिए इन्द्रिय-निग्रह करना नितान्त असम्भव है; उसी प्रकार जब कोई ईश्वर-दर्शन कर लेता है, तब उसके मन के लिए कुछ गलत करना भी असम्भव हो जाता है; क्योंकि दीर्घ अभ्यास के बाद वह सही काम करने का आदी हो जाता है। इसलिए मन ही सब कुछ है। यदि हम उसे सही अवस्था में रखें, अनुशासित एवं सुनियंत्रित रखें, तो वह हमारे वश में हो जाता है। हमें यह देखना होगा कि यह मनरूपी-यंत्र जिसके द्वारा हमें अपना लक्ष्य प्राप्त करना है, चाहे वह लक्ष्य सांसारिक हो अथवा ईश्वर-दर्शन से सम्बन्धित, सजग और स्वस्थ हो। यदि मन को बिना लगाम के खुला छोड़ दिया जाय, तो हम इस पार्थिव जगत् में ही बहुत कम उपलब्धि कर पाते हैं, आध्यात्मिक जगत् की बात तो छोड़ ही दें। अतएव, हमें पूजा के द्वारा मन को शुद्ध करने का दृढ़ एवं निरन्तर अभ्यास करना होगा और निरन्तर जप, सत्संग तथा स्वाध्याय के सतत् अभ्यास के द्वारा उसे सर्वदा भगवान् के चरणों में लगाना होगा—उसे सब कुछ छोड़कर केवल एक ईश्वर के ही सन्धान में जाने के लिए बाध्य करना होगा। □

स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज के उपदेश

[स्वामी वीरेश्वरानन्दजी ने समय-समय पर साधकों को जो उपदेश दिये, उनमें से कुछ को संकलित कर 'प्रबुद्ध भारत' अंग्रेजी मासिकी के मार्च १९६९ अंक में छापा गया था। प्रस्तुत लेख उसी का अनुवाद है, जो रामकृष्ण मठ, नागपुर के ब्रह्मचारी प्रज्ञाचैतन्य द्वारा किया गया है तथा जो 'विवेक ज्योति' अंक ३,१९८४ से साभार गृहीत हुआ। सं०]

शास्त्र हमें सलाह देते हैं कि हमें क्या करना चाहिए और क्या नहीं, हमारे लिए क्या कल्याणकारी है और क्या अहितकर। ईश्वर-दर्शन ही हमारे लिए सर्वाधिक कल्याणकारी है जो हमें सभी सांसारिक दुःख-कष्टों के परे ले जाता है। ईश्वरोपलब्धि के लिए शास्त्र हमें कुछ कार्य करने का निर्देश देते हैं, और कुछ अन्य कार्यों का निषेध करते हैं। जिन कर्मों को शास्त्रों ने मना किया है, वे 'निषिद्ध कर्म' कहे जाते हैं। नैतिकता की दृष्टि से ये अनुचित कर्म हैं। फिर भी शास्त्र हमें कुछ ऐसे कर्मों की अनुमति प्रदान करते हैं, जो भले ही फल-प्राप्ति की इच्छा से सम्पन्न किये जाते हैं, तथापि सत्कर्म हैं, जैसे—इस लोक या परलोक में सुख-प्राप्ति की इच्छा से किये गये कर्म। उन लोगों को, जिनके मन में कुछ कामनाएँ हैं, थोड़ा-सा सुख भोगना ही चाहिए, जिससे वास्तविक रूप से ईश्वरोपलब्धि के पथ पर बढ़ने के पूर्व उनकी इच्छाएँ शमित हो जाएँ। इसका कारण यह है कि भगवत् प्राप्ति के पूर्व साधक को निष्कामता की उपलब्धि करनी होगी। अतः इन कामनाओं की पूर्ति के लिए शास्त्र हमें यज्ञ करने का निर्देश देते हैं। ऐसे कर्म फलों की इच्छा से किये जाने के बावजूद, अन्ततोगत्वा वे कर्ता को निष्कामता की ओर ले जाते हैं। परन्तु जो कार्य शास्त्रों द्वारा निषिद्ध हैं, वे कभी भी हितकर नहीं हैं। अतः मनुष्य को भी उत्कट कामनाओं से प्रेरित हो इन निषिद्ध कर्मों को करने में अग्रसर नहीं होना चाहिए।

प्रश्न उठता है कि फलों की कामना से किये हुए यज्ञ हमें किस प्रकार कामनाहीनता की ओर ले जाते हैं? सभी समान यज्ञों में यजमान देवता के निमित्त कुछ

अर्पित करता है, जिसके बदले वे उसे उसका इच्छित फल प्रदान करते हैं। इस प्रकार मनुष्य कामनाहीनता के मार्ग में पहला कदम रखता है। इन यज्ञों के माध्यम से भी वह त्याग और निःस्वार्थता सीखता है।

जब एक व्यक्ति बिना फल की आकांक्षा के ही कर्म करना सीख लेता है, तो उसका मन पवित्र हो जाता है और उसे विवेक या विचार की प्राप्ति होती है। तब उसे ज्ञान होता है यह जगत् मिथ्या है और एकमात्र ईश्वर ही सत्य है। वह ज्ञान उसे ईश्वरोपलब्धि के लिए संघर्ष करने को प्रेरित करता है। जब वह इस स्थिति तक पहुँच जाता है, तो शास्त्र उसके लिए दो मार्गों का निर्देश करते हैं—ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग। ज्ञान-मार्गी साधक को यह विचार करना पड़ता है कि वह न तो शरीर है, न इन्द्रियाँ, न मन, वरन् वह शुद्ध आत्मा है। केवल अज्ञानवश ही हम अपने आपको शरीर, मन या और कुछ समझते हैं। हमारी आत्मा अज्ञान के परदे से ढकी हुई है और इसी वजह से हम चीजों को गलत रूप में देखते हैं। इस प्रकार विचार की सहायता से सभी अनात्म वस्तुओं को नकारते हुए अन्त में हम आत्मा का साक्षात्कार करते हैं। साधारण लोगों के लिए इस पथ पर चलना निःसन्देह कठिन है। इसीलिए शास्त्र एक और सरलतर मार्ग का उपदेश देते हैं जिसे भक्तिमार्ग कहते हैं। इसमें जिन उपायों का निर्देश किया गया है, उनमें एक है भगवन्नाम का जप। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से भगवान् और उनका नाम अभिन्न है। अतः उनके नाम का निरन्तर जप करके दर्शन प्राप्त किया जा सकता है।

साधक को सारे दिन अपने समस्त क्रियाकलापों के बीच भी, सर्वदा उनका नाम जपने का प्रयास करना चाहिए। यह असम्भव-सा लग सकता है, पर स्वयं भगवान् ने यही उपाय अर्जुन के लिए नियत किया था। वे कहते हैं—"तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च"—"इसलिए तू हर समय मेरा स्मरण कर और युद्ध कर।" यदि पाण्डव-सेना के सेनापति अर्जुन के लिए रणभूमि में इतनी जिम्मेदारियों के बीच यह करना सम्भव था, तो फिर हमारा कार्य तो अर्जुन की तुलना में आसान है। क्या हम अपने दैनन्दिन-कार्यों के बीच उनका स्मरण और उनके नाम का जप नहीं कर सकते? हम बहुधा सोचते हैं कि हमें साधना के लिए समय नहीं मिलता और इसलिए ऐसी योजनाएँ बनाते हैं कि काम-काज और चिन्ताओं से मुक्त होने पर साधना करेंगे। पर ऐसा सोचना गलत है, क्योंकि ऐसा कोई भी समय न होगा, जब हम कर्मरहित होंगे। यदि एक व्यक्ति समुद्र में स्नान करने की इच्छा से जाए और तट पर बैठकर सोचे कि समुद्र की लहरें थम जाने पर डुबकी लगाऊँगा, तो वह व्यक्ति कभी भी स्नान न कर सकेगा, क्योंकि लहरों के बीच ही डुबकी लगानी होगी। ठीक उसी प्रकार हमें अपने कार्यों के बीच ही भगवान् का नाम लेना होगा।

आध्यात्मिक जीवन में एक बात बहुत ही महत्वपूर्ण और सदा स्मरण रखने की है, वह यह कि हम चाहे जितना भी जप-तप क्यों न करें, इसकी कोई गारण्टी नहीं कि हम ईश्वर का दर्शन पाएँगे ही। यह पूर्णतया उनकी कृपा पर ही निर्भर करता है और कृपा में कोई शर्त नहीं है। परन्तु उनकी कृपा उन पर नहीं होगी, जो प्रयास ही नहीं करते। हमें जितना भी हो सके अधिक-से-अधिक प्रयास करना होगा तभी हमें उनकी कृपा प्राप्त करने की एक सम्भावना होगी।

यदि हमें शीघ्रतापूर्वक तथा आसानी से फल प्राप्त न हो तो केवल इसी कारण से हमें साधना से निवृत्त नहीं होना चाहिए। भगवान् श्रीरामकृष्णदेव ने पीलिया के रोगी का उदाहरण दिया है। मिश्री यद्यपि पीलिया की औषध है, तथापि प्रारम्भ में इसका स्वाद कड़वा लगता है। परन्तु जैसे-जैसे रोगी इसे लेने लगता है, धीरे धीरे इसका स्वाद मीठा लगना शुरू हो जाता है और रोग भी दूर हो जाता है। ठीक इसी प्रकार भवरोगरूपी पीलिया के लिए भगवन्नाम ही औषध है। प्रारम्भ में इसका स्वाद कड़वा लगता है, परन्तु यदि हम साधना

में डटे रहें, तो धीरे-धीरे यह संसाररूपी पीलिया दूर हो जाता है और नाम भी मीठा लगने लगता है। इसलिए साधक को ईश्वर के नाम का जप करना चाहिए, भले ही शुरू में उसमें आनन्द न मिले। धीरे-धीरे उसे नाम की शक्ति के प्रकट होने का अनुभव होगा और उसे भगवान् की प्राप्ति होगी। वह जितना ही जप करेगा, उतना ही आनन्द पायगा। इसीलिए कहा है—"जपात् सिद्धिः"—जप के द्वारा भगवान्-लाभ होता है।

ईश्वरोपलब्धि के लिए ध्यान भी एक आवश्यक साधन है। एक पात्र में ढालते समय तेल की धारा जैसे अटूट गिरती है, उसी प्रकार निरन्तर ध्यान करना चाहिए। इसका मतलब यह नहीं कि साधक को संसार से दूर कहीं नीरव स्थान में जाना होगा। इसी कारण स्वामी विवेकानन्द ने इस ध्यान को एक विशेष भाव के साथ किये जानेवाले कर्म से जोड़ दिया है। सभी के भीतर ईश्वर को देखते हुए यदि हम उनकी सेवा करें, तो वह कर्म-पूजा या उपासना हो जाता है और हमारे क्रिया-कलापों के बीच भी ध्यान की तारतम्यता को बनाये रखने में सहायक होता है।

यदि हम भगवत्-प्राप्ति का अनन्त सुख और चरम आनन्द पाना चाहते हैं तो हमें इस जगत् के सीमाबद्ध और क्षणभंगुर सुखों का परित्याग करना होगा, और साथ ही शास्त्र एवं आचार्यों के निर्देशानुसार कठिन साधना भी करनी होगी।

★

जहाँ तक हो सके अतीत की ओर देखो, पीछे जो चिरन्तन निर्झर बह रहा है, आकंठ उसका जल पिओ और उसके बाद सामने देखो और भारत को उज्ज्वलतर, महत्तर और पहले से और भी ऊँचा उठाओ।

--स्वामी विवेकानन्द
(वि० सा० ५,१८०)

शुभ कामनाओं सहित :

★

श्री गोपाल सदन

अपर बाजार

राँची

नारद-भक्ति-सूत्र

—स्वामी वेदान्तानन्दजी महाराज

सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना।

अष्टम अनुवाक

भक्ति का वैशिष्ट्य

अन्यस्मात् सौलभ्यं भक्तौ ॥५८॥

अन्यस्मात् (दूसरे सभी प्रकार के साधनों से) भक्तौ (भक्ति की साधना में) सौलभ्यम् (सुलभता है) ॥ ५८

अन्य सारे साधनों की अपेक्षा भक्तिपथ सहज है ॥५८

पहले श्रीनारद ने कहा है कि भक्ति ही श्रेष्ठ है। अब कहते हैं कि अन्य सारे मार्गों की अपेक्षा भक्ति केवल श्रेष्ठ ही नहीं है, बल्कि अन्य सारे मार्गों की अपेक्षा निश्चय ही सहज भी है। इस पथ में सब का अधिकार है। इसमें जाति, कुल, विद्या, वय, देश और काल आदि की अपेक्षा नहीं है।

प्रेम करना तो जीव के स्वभाव में ही है! हृदय की प्रीति जो दिन-रात उत्पन्न होती रहती है—उसे किसी व्यक्ति या वस्तु को अर्पित किये बिना जीव स्थिर रह नहीं पाता। बुद्धि की मलिनता के कारण जबतक प्रकृत प्रेमास्पद को हम ढूँढ़ नहीं पाते तबतक वह प्रेम अपात्र को अर्पण कर, उसके फलस्वरूप हमलोग केवल दुःख का बोझ ढोकर मरते हैं। किन्तु, ईश्वर की कृपा से जब मन का भ्रम मिट जाता है, तब प्रेम का प्रवाह सहज ही ईश्वर की ओर हो जाता है। प्रेम की डोर से वे हृदय-मंदिर में बँध जाते हैं। इसी से उन्हें भरे हृदय से पुकारने की भाँति सहज साधना और कुछ नहीं है।

"ज्ञानयोग या कर्मयोग तथा अन्य पथों से भी ईश्वर के समीप जाया जाता है, किन्तु भक्तिमार्ग से उनके निकट सहज ही पहुँचा जाता है। जो ब्रह्मज्ञान चाहते हैं, वे यदि भक्तिमार्ग से भी जायँ तब भी ब्रह्मज्ञान प्राप्त करते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि भक्त एक जगह पहुँचेगा और ज्ञानी या कर्मयोगी किसी दूसरी जगह। भक्तवत्सल भगवान चाहें तो ब्रह्मज्ञान दे सकते हैं। ईश्वर यदि खुश हों तो, भक्ति भी देते हैं, ज्ञान भी देते हैं।"

"भक्ति के द्वारा ही ईश्वर का दर्शन होता है। भाव-समाधि में रूप-दर्शन होता है, और निर्विकल्प-समाधि में अखण्ड सच्चिदानन्द का दर्शन होता है—तब अहं, नाम, रूप आदि नहीं रहते।"

"शास्त्र में जिन सब कर्मों की बात कही गयी है, उन कर्मों के लिए समय कहाँ है? एक तो जीव की स्वल्प आयु है, फिर उसके अन्नगत प्राण हैं—कठोर तपस्या कैसे करेगा? यदि कर्म करने कहो, तो कुछ अप्रयोजनीय अंश छोड़कर करने कहना।

"कलियुग में ज्ञानयोग भी बड़ा कठिन है। देहाभिमान किसी भी प्रकार से छूटता नहीं। देहबुद्धि के रहने से ही विषयबुद्धि साथ रहेगी, रूप-रस-गन्ध-स्पर्श-शब्द—ये सारे विषय हैं। विषयबुद्धि का जानना बड़ा कठिन है। विषयबुद्धि के रहने पर—'सोऽहं' का ज्ञान नहीं होता।"

भक्तिमार्ग के द्वारा ईश्वर क्यों सुलभ हैं; वही बात अभी यहाँ श्रीनारद ने कही है।

प्रमाणान्तरस्य अनपेक्षत्वात् स्वयं प्रमाणत्वात् ।। ५९ ।।

[यह भक्ति] स्वयं (आप ही) प्रमाणत्वात् (चूँकि प्रमाणस्वरूप है) [इसलिए] प्रमाणान्तरस्य (अन्य प्रमाणों की) अनपेक्षत्वात् (अपेक्षा नहीं है) [भक्ति में] ।। ५९

भक्ति के अन्य प्रमाणों की और आवश्यकता नहीं है, क्योंकि भक्ति स्वयं ही प्रमाणस्वरूपा है ।।५९

अनजाने विषय को जानने के लिए अनेक प्रमाणों का प्रयोजन होता है। फिर प्रमाण की योग्यता के सम्बन्ध में अनेक सन्देह उठ सकते हैं। किन्तु भक्ति को किसी प्रमाण का प्रयोजन नहीं है। भक्ति अनुभव की वस्तु है। और अनुभव सर्वश्रेष्ठ प्रमाण होता है। भक्त भक्ति के अविर्भाव का अपने हृदय में ही अनुभव करते हैं। कर्म, ज्ञान या योग के मार्ग में साध्य को प्रत्यक्ष करने के लिए साधक को प्रत्येक क्षण अपने मन के साथ लड़ाई करनी पड़ती है। किन्तु भक्त की साधना शुरू होती है साध्यवस्तु को लेकर। इसीसे भक्ति-मार्ग में ईश्वर सुलभ होते हैं।

असुर बालकों को प्रह्लाद ने कहा था—

न ह्यच्युतं प्रीणयतो बह्वायासोऽसुरात्मजाः।
आत्मत्वात् सर्वभूतानां सिद्धत्वादिः सर्वतः ।।
भा० ७।६।१९

'श्री हरि को प्रेम करने के लिए विशेष प्रयास की आवश्यकता नहीं होती। वे तो सकल प्राणियों की आत्मा और सर्वत्र विराजमान हैं !'

भक्ति की श्रेष्ठता के और भी कारण हैं—

शान्तिरूपात् परमानन्दरूपाच्च ।।६०।।

शान्तिरूपात् (शान्तिस्वरूप होने से) च (एवं) परमानन्दरूपात् (परमानन्दस्वरूप होने से) [भक्ति की साधना सुलभ है] ।।६०

शान्तिस्वरूप और परमानन्द स्वरूपा होने से भक्ति की साधना सुलभ है ।।६०

शान्ति और आनन्द का हमलोग अपने हृदय में अनुभव करते हैं, इनके अनुभव के लिए बाहर के किसी प्रमाण की जरूरत नहीं होती। शान्ति और आनन्द के लिए हमलोग कितने सारे काम करते हैं ! किन्तु विषयभोग से क्षणिक शान्ति, तुच्छ आनन्द पाते हैं, उससे स्थायी शान्ति या परमानन्द की प्राप्ति नहीं होती। पराभक्ति में केवल प्रेमास्पद को लेकर आनन्द का अनुभव होता है। इसीसे पराभक्ति की प्राप्ति से जीवन सार्थक होता है।

लोकहानौ चिन्ता न कार्या निवेदितात्मलोक-वेदशीलत्वात् ।।६१।।

निवेदितात्मलोकवेदशीलत्वात् (स्वयं को, संसार की सारी वस्तुओं को तथा शास्त्रीय आचार आदि सब को भगवान को निवेदित करने के फलस्वरूप) [भक्त को] लोकहानौ (अपने धन-जन आदि के विनाश से) चिन्ता न कार्या (चिन्ता नहीं करनी चाहिए) ।।६१

अपने आपको और अपनी सारी वस्तुओं तथा शास्त्रीय आचार आदि को भक्त भगवान को निवेदित कर देते हैं, इसलिए वे फिर धन-जन आदि का विनाश होने पर चिन्तित नहीं होंगे ।।६१

भक्त का अपना कहकर कुछ नहीं रहता। धन-जन सब कुछ इष्ट के चरणों में समर्पण कर वे एकान्तभाव से ईश्वर के हो जाते हैं। इष्ट ही उनका एकमात्र अपना धन होता है। इसीसे धन के नाश होने, आत्मीय जन की मृत्यु होने या स्वजन-विच्छेद होने पर वे कातर नहीं होते। चूँकि भक्त संसार में इष्ट का प्रकाश देखते हैं, इसलिए वे संसार की सेवा करते हैं।

"एक व्यक्ति ने किसी पहाड़ के ऊपर बड़े कष्ट से एक कुटिया बनायी थी। एक दिन जोरों की आँधी उठी। इससे कुटिया हिलने-डुलने लगी। वह व्यक्ति बड़ी चिन्ता में पड़ गया। तब उसने कहा, 'हे पवनदेव, देखो, घर जिससे टूटे नहीं, बाबा !' पवनदेव सुनते हैं नहीं। घर चड़मड़ाने लगा। तब उसने एक फन्दा खड़ा किया। पवन के पुत्र तो हनुमान हैं। तब वह जल्दी-

जल्दी बोलता है—'बाबा, यह हनुमान का घर है, देखो, इसे तोड़ो नहीं।' किन्तु तब भी घर चड़मड़ कर रहा है। जब उसने देखा कि इससे कुछ भी नहीं हुआ, तब कहता है, 'बाबा, यह लक्ष्मण का घर है, लक्ष्मण का घर है।' इससे भी जब आँधी नहीं रुकी, तब वह कहता है—'बाबा, यह राम का घर है, राम का घर है।' किन्तु आँधी ने किसी की दुहाई नहीं मानी। चड़मड़ाकर घर टूटने लगा। प्राण बचाने के लिए घर से बाहर आने के समय वह व्यक्ति कहने लगा,—'जा: साले का घर।' जो कुछ होता है, ईश्वर की इच्छा से होता है, यह जानना। उनकी इच्छा से हुआ, उनकी इच्छा से जाता है। तुम क्या करोगे ?"

न तदसिद्धौ लोकव्यवहारो हेयः किन्तु फलत्यागस्तत्साधनञ्च कार्यमेव ॥६२॥

तत् असिद्धौ (भगवान को सर्वस्व अर्पण नहीं कर पाने तक) लोकव्यवहारः (लौकिक आचार-व्यवहार) न हेयः (निन्दित समझकर त्याग नहीं करना); किन्तु फलत्यागः (कर्मफल का त्याग) च (एवं) तत्साधनं (कर्मफल के त्याग के लिए साधना अर्थात् अभ्यास) कार्यम् एव (करना उचित है) ॥६२

ईश्वर में सर्वतोभावेन आत्मार्पण नहीं कर पाने तक लौकिक आचार-व्यवहार का बलपूर्वक त्याग नहीं करना चाहिए। किन्तु कर्मफल का त्याग कर एवं फल की कामना के त्याग के अभ्यास के साथ सारे कर्म करते जाना उचित है ॥६२

इस सूत्र का पाठान्तर 'न तत् सिद्धौ लोकव्यवहारो हेयः' इत्यादि है। यह पाठ ग्रहण करने पर इसका अर्थ होगा, 'भक्ति-लाभ होने पर भक्त को लौकिक-कर्मों का त्याग करना होगा, ऐसी बात नहीं है।'

प्रेम के उदय से इष्टदेव के चरणों में आत्मार्पण करना जबतक सहज नहीं होता तबतक कर्म करते रहना होगा। कर्मत्याग होने का समय होने पर अपने आप कर्म छूट जायगा। प्रेम के उदय होने पर जो कर्मत्याग होता है उस त्याग में अहंबोध या कर्त्तापन का बोध नहीं रहता। बलपूर्वक कर्म का त्याग मोह के वशीभूत होने से होता है। उस त्याग से अपना तो कल्याण होता नहीं; समाज का भी अकल्याण होता है। इष्ट के चरणों में अपना सर्वस्व अर्पण करने की साधना जबतक जीवन में सहज नहीं हो जाती, तब तक कर्म के फल का त्याग कर, फल का इष्ट को अर्पण कर, लौकिक तथा शास्त्रविहित कर्म करते रहना पड़ेगा। जबतक 'कच्चा मैं' प्रबल रहता है तबतक निष्काम कर्म करना सम्भव नहीं होता। जब 'मैं' पक्का हो जाता है, इष्ट के साथ नित्य सम्बन्ध स्थापित हो जाता है—तब से जो कर्म अनुष्ठित होता है वह कर्म फिर 'मेरा' कर्म नहीं रहता—वह कर्म मेरे आराध्यदेव का हो जाता है। मुझे यन्त्रस्वरूप बनाकर अपना कर्म वे स्वयं करते हैं। मेरे ये देह-मन-प्राण उनकी विचित्र विश्वलीला के सहायक मात्र हैं। अपना अभिप्राय वे स्वयं समझते हैं। मेरा कर्त्तव्य है—सामने जो आ पड़े उसे उनके नाम से, उनके उद्देश्य से, सुन्दर भाव से करते जाना। ईश्वर का कार्य है, ऐसा बोध होने पर उसे सर्वाङ्ग सुन्दर करना ही पड़ता है।

स्त्री-धन-नास्तिक-वैरिचरित्रं न श्रवणीयम् ॥६३॥

स्त्री-धन-नास्तिक-वैरिचरित्रं (स्त्रियों, धन, नास्तिक या अपने शत्रु के सम्बन्ध में कोई बात) न श्रवणीयम् (सुनना उचित नहीं है) ॥६३

स्त्रियाँ, धन, नास्तिक या अपने शत्रु के विषय में किसी बात को सुनना उचित नहीं है ॥६३

साधनपथ के विरोधी विषयों के प्रसंग में फिर विवेचना हो रही है। असत्सङ्ग के त्याग की बात पहले कही गयी है। अभी फिर विशेष भाव से उस प्रसंग का उत्थापन किया जाता है।

साधना पथ की सबसे प्रमुख बाधा एवं चित्त-विक्षेप के प्रधान कारण हैं—कामिनी-कांचन। इसीसे साधक को इन दोनों के संग का त्याग करना होगा। संग तो दूर की बात है, इस सूत्र में इनके विषय में सुनने का भी निषेध किया जाता है। भोग्य-वस्तु के विषय में सुनने पर चित्त-भोग की ओर आकृष्ट होता है।

नास्तिक के चरित्र या उसके मतवाद के विषय में सुनना निषिद्ध है। सत्य वस्तु का जो संधान नहीं कर सका, वह विभ्रान्तिजनक तर्कजाल में अपने को आबद्ध रखकर सुखी रहता है। उसके सम्बन्ध में सुनने पर बुद्धि में भ्रम उत्पन्न हो सकता है।

फिर अनिष्टकारी शत्रु की बात भी नहीं सुननी है। भक्त सब को अपना बना लेने की चेष्टा करते हैं। किन्तु जबतक समदर्शन का भाव सिद्ध नहीं होता, तबतक शत्रु के विषय में सुनने पर हृदय में द्वेष और हिंसा की अग्नि प्रज्वलित हो जाती है तथा इसके फलस्वरूप चित्त-साधना विमुख और विषयोन्मुखी हो सकता है।

"भगवान-लाभ करने के लिए स्त्रियों से काफी दूर रहना होगा। युवती के समीप अत्यन्त सावधानी से रहने पर भी कुछ-न-कुछ काम-भाव जगकर ही रहेगा। युवती के साथ में निष्काम व्यक्ति को भी कामोद्रेक होता है।"

"मैथुन आठ प्रकार का होता है—स्त्रियों की बात सुनते-सुनते जो आनन्द होता है, उसे भी मैथुन कहते हैं। स्त्रियों के विषय में बातचीत करने से जो आनन्द होता है, उसे भी मैथुन कहते हैं। स्त्रियों के साथ एकान्त में बैठकर बात करने से जो आनन्द होता है, उसे भी मैथुन कहते हैं। स्त्रियों की किसी वस्तु को निकट रखने से जो आनन्द होता है, उसे भी मैथुन कहते हैं। स्त्रियों के विषय में गोपनीय बातों का विवेचन करने से जो आनन्द होता है, उसे भी मैथुन कहते हैं। कामभाव से स्त्रियों की ओर निहारने को भी मैथुन कहते हैं। स्त्रियों की देह का स्पर्श करने से जो आनन्द होता है, उसे भी मैथुन कहते हैं। इसी से गुरु पत्नी के युवती होने पर उनका चरण स्पर्श नहीं करना चाहिए। वीर्यपात को मैथुन कहते हैं।"

"जो ईश्वर-प्राप्ति के लिए साधन-भजन करना चाहता है, वह किसी प्रकार से भी कामिनी-कांचन में आसक्त नहीं हो। कामिनी-कांचन का संपर्क रहने पर किसी काल में भी ईश्वर-लाभ नहीं होगा। कामिनी-कांचन ईश्वर-पथ के विरोधी हैं, उन से मन को हटा लेना होगा।"

"स्त्रियों के विषय में सहज ही आसक्ति होती है। स्त्रियाँ स्वभावतः ही पुरुषों को प्यार करती हैं और पुरुष स्वभावतः ही स्त्रियों को प्यार करते हैं। इसीसे दोनों ही शीघ्र गिर जाते हैं।"

श्रीभगवान उद्धव को कहते हैं—

स्त्रीणां स्त्रीसङ्गिनां सङ्गं त्यक्त्वा दूरत आत्मवान्।
क्षेमे विविक्त आसीनश्चिन्तयेन् मामतन्द्रितः॥
न तथास्य भवेत् क्लेशो बन्धश्चान्य प्रसङ्गतः।
योषित्सङ्गाद् यथा पुंसो यथा तत्सङ्गिसङ्गतः।

भा० ११।१४।२९-३०

'इन्द्रियों और मन को संयत कर, स्त्रियों एवं स्त्रियों के प्रति आसक्त लोगों के संग का त्याग कर, निर्जन एवं पवित्र स्थान में निवास कर, सावधानतापूर्वक मेरा चिन्तन करना। स्त्रियों एवं स्त्रियों के वशीभूत पुरुषों के संग से मनुष्य के समक्ष जिस प्रकार दुःख और बन्धन आ उपस्थित होते हैं उस प्रकार और किसी से नहीं होता।' ◻

पहले आदमी 'मनुष्य' उत्पन्न करो। हमें अभी मनुष्यों की आवश्यकता है, और बिना श्रद्धा के मनुष्य कैसे बन सकते हैं।

--स्वामी विवेकानन्द

(वि० सा० ६,६७)

मंगल कामनाओं सहित :

सर्वश्री नागरमल मनोज कुमार

अपर बाजार

राँची

शुभकामनाओं सहित :

ॐ
ॐ
ॐ

सर्वश्री शान्ति लाल काबरा

अधिवक्ता

राँची

अवश्य पढ़िए :-

(१) गीतातत्त्व-चिन्तन

भाग—१ पृष्ठ-५१० + चौबीस

लेखक—**स्वामी आत्मानन्द**

मूल्य : पेपरबैक संस्करण—३० रुपये

ग्रन्थालय डीलक्स संस्करण—४५ रुपये

लिखें—रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,

रायपुर—४९२ ००१

(२) श्रीसारदा देवी

लेखक—**स्वामी वेदान्तानन्द**

मूल्य—६ रुपये

लिखें— रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना-४

(३) नारद-भक्ति-सूत्र (शीघ्र प्रकाश्य)

लेखक—**स्वामी वेदान्तानन्द**

मूल्य—१२ रुपये

लिखें—रामकृष्ण आश्रम, जयप्रकाश नगर, छपरा